तिब्बत में बौद्ध धर्म

राहुल सांकृत्यायन

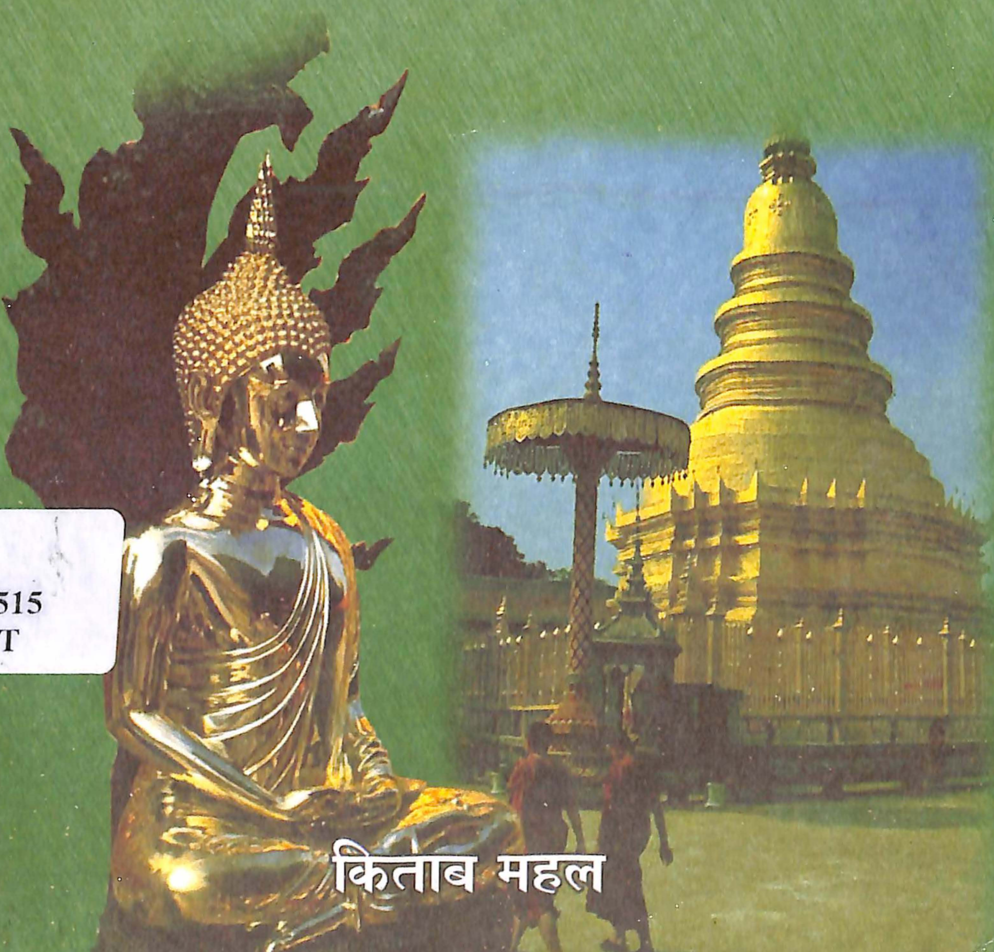

H
94.7909515
Sa 586 T

किताब महल

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SHIMLA

तिब्बत में बौद्ध धर्म

राहुल सांकृत्यायन

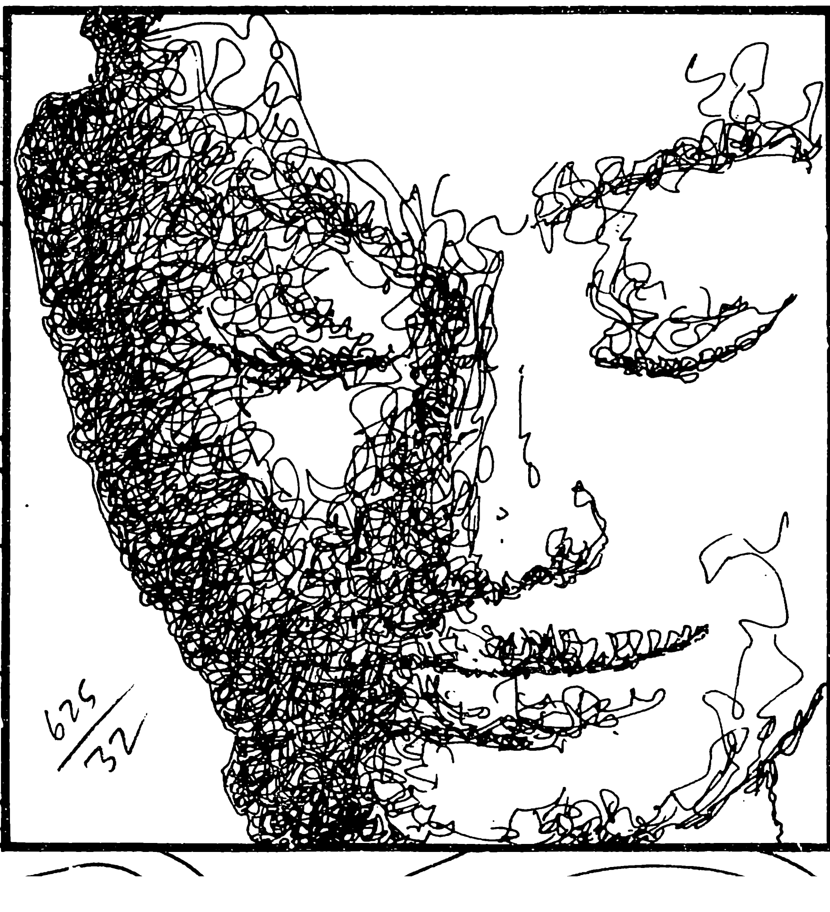

625/32

तिब्बत में बौद्ध धर्म

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

प्रथम संस्करण : 1948
प्रस्तुत संस्करण : 2012

ISBN : 81-225-0325-X

मुख्य वितरक

1. **किताब महल एजेन्सीज**
22, सरोजनी नायडू मार्ग
इलाहाबाद - 211001
फोन : 0532-2423466, 2424154

2. **किताब महल पब्लिशर्स**
8, हरि सदन, (ग्राउण्ड फ्लोर)
20, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
फोन : 011-23273230; 09311680121
फैक्स : 011-23289285
E-mail : kitab_mahal@hotmail.com

3. **किताब महल एजेन्सीज**
अशोक राजपथ
पटना-800004
फोन : 0612-2303531

Library IIAS, Shimla
H 294.7909515 Sa 586 T
140860

Indian Institute of Advanced Study
Acc. No. 140860
Date 14/11/14
Shimla

मूल्य : ₹ 30.00

प्रकाशक : किताब महल, 22, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।
फोन : 0532-6544154
visit : www.kitabmahalpublishers.com; Email : info@kitabmahalpublishers.com

मुद्रक : किताब महल प्रिन्टिंग डिवीजन, 22, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम इतिहास प्रसिद्ध और अमर विभूतियों में गिना जाता है। इनका पितृग्राम कनैला तथा ननिहाल पन्दहा ग्राम है। यह दोनों ग्राम आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) जनपद में आते हैं। इनके पूर्वज सरयूपार गोरखपुर जनपद के मलांव के पाण्डेय थे जो कभी आजमगढ़ के इस अंचल में आ बसे थे। स्वशिक्षित राहुल नियमित पाठशाला पाठ्यक्रम को तिलांजलि देकर संस्कृत से अरबी, फ़ारसी से अंग्रेजी, सिंहली से तिब्बती भाषाओं में भ्रमण करते रहे। उनमें अद्भुत ग्रहण शक्ति थी जिससे उन्होंने इन भाषाओं के ज्ञान भण्डार से घिसी पिटी बातों को छोड़कर उनकी मेधावी प्रज्ञा के सबसे जटिल सार तत्त्वों का मधु संचय निचोड़ निकाला।

बौद्ध धर्म से तो इतना प्रभावित हुये कि स्वयं बौद्ध हो गये। अपने वास्तविक नाम केदारनाथ पाण्डे तक को बदलकर राहुल नाम रखा। 'सांकृत्य' गोत्रीय होने के कारण उन्हें राहुल सांकृत्यायन कहा जाने लगा। उनका समूचा जीवन घुमक्कड़ी का था। घुमक्कड़ जीवन के मूल में अध्ययन की प्रवृत्ति ही सर्वोपरि रही। राहुल जी के साहित्यिक जीवन की शुरुआत सन् १९२७ ई० से हुई तथा उनकी लेखनी उनके जीवन तक (अप्रैल १९६३) चलती रही। अब तक उनके १३० से भी अधिक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। लेखों, निबन्धों एवं भाषणों की गणना एक मुश्किल काम है।

राहुल जी के साहित्य के विविध पक्षों को देखने से ज्ञात होता है कि उनकी पैठ न केवल प्राचीन-नवीन भारतीय साहित्य में थी। अपितु तिब्बती, सिंहली, अंग्रेज़ी, चीनी, रुसी, जापानी आदि भाषाओं की जानकारी करते हुए तत्तत् साहित्य को भी उन्होंने मथ डाला।

बौद्ध दर्शन के वे मान्य विद्वान् और व्याख्याता थे–त्रिपिटकाचार्य। उनकी अन्य सभी बातों को यदि हम अलग कर दें तो हम यह पाते हैं कि तिब्बत से प्राचीन ग्रंथों की जो थाती राहुल जी भारत ले आये वे ही उनको अमरता प्रदान करने के लिये पर्याप्त है।

बौद्ध धर्म के मानने वाले उन्हें गौतम बुद्ध का अवतार मानते हैं। प्रो० सिल्वा लेवी ने उनकी गणना बौद्धधर्म के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में की है तथा उन्हें चौदह आदर्शों का प्रतिनिधि माना है। उन्हें देशी-विदेशी ३६ भाषाओं का ज्ञान था।

वर्ष १९२९ में बौद्ध धर्म ग्रंथों की खोज में वे नेपाल होते हुये तिब्बत गये जहाँ भीषण कष्टों एवं बाधाओं को सहते हुये भी अनेक दुर्लभ बौद्ध ग्रंथों की खोज की।

वर्ष १९३४ में दूसरी बार, वर्ष १९३६ में तीसरी बार तथा वर्ष १९३८ में चौथी बार उन्हें तिब्बत जाना पड़ा। धर्मशास्त्र पर लिखित उनकी आठ प्रमुख रचनावलियों में से एक प्रमुख रचनावली "तिब्बत में बौद्ध धर्म" है जो उन्होंने वर्ष १९३५ में लिखा। अपनी मूल्यवत्ता और शोध की सरल एवं मनोरम शैली के कारण यह पुस्तक विद्वानों में अत्यंत सराही और ग्राह्य की गई।

प्रस्तुत पुस्तक "तिब्बत में बौद्ध धर्म" राहुल जी की अलभ्य व पांडित्यपूर्ण कृतियों में से एक है। जिसे उन्होंने पाँच विभिन्न काल खंडों में ६४० ई० से १६६४ ई० तक क्रमशः लिपिबद्ध किया है जिसका वर्गीकरण इस प्रकार है—

१. आरंभ युग (६४०-८२३ ई०)
२. शांतरक्षित युग (८२३-१०४२ ई०)
३. दीपंकर युग (१०४२-११०२ ई०)
४. स-स्क्य युग (११०२-१३७६ ई०)
५. चोङ्-ख-प-युग (१३७६-१६६४ ई०)
६. अंतिम युग (१६६४ ई०)

विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में उन विशेष कारणों पर प्रकाश डाला है जिनके फलस्वरूप बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार तिब्बत में ६४० ई० से पूर्व मंदगति से हुआ जबकि यह धर्म तीसरी शताब्दी से ही पहले भारत की सीमा से बाहर फैलने लगा था तथा ६४० ई० तथा उसके बाद के वर्षों में इस धर्म को किन महानुभावों ने इसे प्रतिस्थापित तथा सम्मानित किया।

इस पुस्तक में तिब्बत में बौद्ध धर्म के उन्नयन के साथ-साथ उन ऐतिहासिक व राजनैतिक घटना क्रमों का भी सविस्तार वर्णन किया गया है तथा तिब्बत देश की विस्तृत जानकारी भी दी गई है। विभिन्न घटनाक्रमों में संवहित करके पाठकों को अपने साथ बाँधे रखने का प्रयास अलभ्य और अनूठा है तथा उन्हें "तिब्बत में बौद्ध धर्म" के विषय में संपूर्ण जानकारी दी गई है।

यह पुस्तक राहुल जी की अमर कृतियों में से एक है।

विषय सूची

	विषय	पृष्ठ
१.	आरंभ युग (६४०-८२३ ई०)	३
२.	शांतरक्षित युग (८२३-१०४२ ई०)	६
३.	दीपंकर युग (१०४२-११०२ ई०)	१९
४.	स-स्क्य युग (११०२-१३७६ ई०)	२६
५.	चोङ्-ख-प-युग (१३७६-१६६४ ई०)	३१
६.	अंतिम युग (१६६४-१९१२ ई०)	३८

परिशिष्ट

१.	भोटदेशीय संवत्सर चक्र (रब्- ऽब्युङ्) का आरम्भ	४२
२.	भोटदेशीय संवत्सर चक्र (रब् - ऽब्युङ्)	४३
३.	भोटेदेशीय मासों के नाम	४५
४.	प्रत्येक रब्-ऽब्युङ् में अधि-मास वाले वर्ष और मास	४६
५.	स-स्क्य मठ (स्थापित १०७३ ई०) के संघराज	४७
६.	कर्-म संघराज	४८
७.	चोङ्-ख-प की गद्दी के मालिक द्गऽल्दन्-संघराज	४९
८.	बौद्ध विद्वान् और उनके आश्रयदाता आदि	५१
९.	तिब्बत में भारतीय ग्रंथों के कुछ प्रधान अनुवादक, उनके सहायक और ग्रंथ	६१
	१० से १८ तक चार्ट	

तिब्बत में बौद्ध धर्म

ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी से ही बौद्धधर्म भारत की सीमा से बाहर फैलने लगा था। उस वक्त उसके धर्म-दूत न केवल बर्मा और लंका में बल्कि मेसोपोटामिया, मेसीदोनिया और मिश्र तक पहुँच गए थे। इसी समय मध्य-एशिया में बौद्ध धर्म ही नहीं फैला, बल्कि परंपरा के अनुसार सम्राट अशोक का एक पुत्र कूचा आस-पास के और प्रदेशों में अपना राज्य भी कायम करने में सफल हुआ। जनश्रुति तो चीन में बौद्ध धर्म का पहुँचना पहले बतलाती है किन्तु ५६ ई० में खोतन के काश्यप-मातंग द्वारा किए गये बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद तो अब भी प्राप्य हैं। ३७२ ई० में बौद्ध धर्म कोरिया में, और ५३८ ई० में जापान में स्थापित हुआ। हिन्दू-चीन में भी वह ईसा की तीसरी शताब्दी से पूर्व पहुँच चुका था। इस प्रकार जबकि बौद्ध धर्म भारत से दूर-दूर देशों में इतना पहले पहुँच चुका था, तो पड़ोसी भोट (तिब्बत) देश में ६४० ई० से पूर्व वह क्यों न पहुँच सका?

वस्तुतः इसका कारण भोट देश की भौगोलिक स्थिति और बहुत कुछ उसी के कारण सामाजिक विकास की गति का मंद होना है। साधारणतः भोट देश में बस्तियाँ समुद्र तल से १० हजार से १२ हजार फीट ऊपर बसी हुई हैं। यदि वह कहीं इनसे नीची हैं, तो अन्यत्र १४ हजार फीट पर भी आप उन्हें देखेंगे। इतनी ऊँचाई पर होने के कारण एक तो वहाँ सर्दी बहुत पड़ती है और दूसरे वहाँ के पहाड़ वृक्ष-वनस्पति शून्य हैं। इस प्रकार वहाँ जीवन-संघर्ष आरम्भ से ही मनुष्य के लिए कुछ कठिन रहा है। लेकिन भोट देशवासियों ने बहुत पहले ही इसको अधिक भीषण न होने देने के लिए जनसंख्या-निरोध की औषधि ढूँढ़ निकाली, और सभी भाइयों की एक ही पत्नी का नियम बना डाला। अब उतने ही खेत और उतने ही भेड़-बकरियों के गल्ले उनकी आने वाली संतति के लिए भी काफी होने लगे। वह अपनी वर्तमान अवस्था से संतुष्ट रहने लगे। उस समय उनकी प्रधान जीविका पशु-पालन थी। यदि परंपरा स्वीकार की जाय, तो कृषि का आरंभ (व्य-रिव्रग्र) स्पु-ल्दे-गुङ्-ग्र्यल्[१] (प्रायः ईसवी सन् के आरंभ) के समय में हुआ। वस्तुतः यदि बाहर की दुनिया ने दुर्गम हिमालय की घाटियों को पार कर भोट-वासियों को बाह्य दुनिया का

१. डाक्टर ए० एच० फ्रांके, 'ऐंटिक्विटीज आव् इंडियन टिबेट', भाग २, पृष्ठ ७९।

परिचय न कराया होता, तो कौन जानता है कि तिब्बत में अभी तक कोई परिवर्तन हुआ होता ?

तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रवेश के बारे में कुछ कहने से पूर्व यहाँ तिब्बत देश के बारे में कुछ कह देना आवश्यक है। तिब्बत देश पूर्व से पश्चिम तक प्रायः उतना ही लंबा है, जितना कि भारत। उत्तर-दक्षिण इसकी चौड़ाई छः-सात सौ मील है। इसके चार भाग हैं—

(१) **पश्चिमी तिब्बत**—जिसमें लद्दाख, शङ्-शुङ्[1] या गूगे (मानसरोवर और लद्दाख के बीच का प्रदेश) और स्पु-रङ्स् (मानसरोवर से पूर्व ग्च़ङ् तक का प्रदेश) हैं।

(२) **मध्य तिब्बत**—अर्थात् ग्चङ् (नेपाल, स्पुरङ्स्, द्वुस्, ल्होख और ब्यङ्-थङ् से घिरा प्रदेश, जिसमें ऽफग्-रि, बक्र-शिस्-ल्हुन्-पो, ञनम् और स्क्यिद्-रोङ् की बस्तियाँ हैं), द्वुस् (द्वुस्-छु नदी की उपत्यका का प्रदेश, जिसमें द्गऽ-ल्दन, ल्ह-स, छु-शल् आदि की बस्तियाँ हैं), ल्होख (छु-शल् से नीचे ब्रह्मपुत्र का तटवर्ती प्रदेश, जिसके निचले भाग में कोङ्-पो प्रदेश है), और कोङ्-पो (पूर्व-वाहिनी ब्रह्मपुत्र का अंतिम और उष्णतम भाग, जो कि भोट के राजवंश का ही मूल-स्थान न था, बल्कि वर्तमान दलाई लामा और टशी लामा की भी जन्मभूमि है। यही यर्-लुङ् बस्ती है, जहाँ स्रोङ्-ब्चन्-स्गम्-पोके पूर्वज

---

१. भोट-भाषा के शब्दों के उच्चारण में इन नियमों का ध्यान रखने पर वह मध्य भोट के उच्चारण के अनुसार हो जायगा।

(१) जितने अक्षर-समूह में केवल एक स्वर उच्चारित होता है, उसे एक विभाजक रेखा से अलग किया गया है, जैसे—बक्र-शिस् (= ट-शि)।

(२) स्वर-युक्तवर्ण के पीछे के स्वरहीन द्, ल, स्, उच्चारित नहीं होते, सिर्फ उनके पूर्व वाले अ, उ, ओ स्वर विकृत हो अ, उ और ओ (जर्मन ä, ü, और ö) बन जाते हैं।

(३) सभी स्वर ह्रस्व लिखे जाते हैं। आमतौर से उनका उच्चारण डेढ़ मात्रा के बराबर होता है, किन्तु दीर्घ और प्लुत उच्चारण भी होते हैं।

(४) जिन वर्णों के नीचे हलंत का चिह्न (्) लगा है, उनके उच्चारण नहीं करने चाहिए, विशेषकर यदि वह स्वरयुक्त वर्ण के पूर्व हों।

(५) संयुक्त वर्णों का उच्चारण होना चाहिए, हाँ यह ध्यान रखना चाहिए, कि—क्र, त्र, प्र, = ट; ख्र, फ्र = ठ; ग्र, द्र, ब्र = ड।

(६) भोट वर्णमाला के कुछ अक्षरों के मैंने इस प्रकार संकेत रखे हैं— च् (Ts), छ् (Tsh), ज़ (Dz), श़् (Zh), स़् (Z), ऽ (h या a)।

रहा करते थे)।

(३) **पूर्वीय तिब्बत**—अर्थात्, खम्स् (पूर्व में चीन के युन्-नन् और से-चु-आन् प्रांतों तक फैला प्रदेश, जिसमें छब्-म्दो और बदेर्ग्यस् के मशहूर मठ स्थापित हुए), अम्-दो (खम्स् के उत्तर में चीन से मध्य-एशिया के वणिक्-पथ के पास तक फैला प्रदेश, जिसमें बक्र-शिस्-ख्यिल्, चो-नस्, सकु-ऽबुम् के प्रसिद्ध मठ स्थापित हुए। महान् सुधारक चोङ्-ख-प भी यहीं की चोङ्-ख बस्ती में उत्पन्न हुआ था, कोकोनोर का महान् सरोवर और मंगोलों की यु-गुर् जाति यहीं बसती है) और गङ् (खम्स् से दक्षिण में)।

(४) **ब्यङ्-थङ्** (चङ्-थङ्)—यह वह अतिशीतल मैदान है, जो मध्य और पश्चिमीय तिब्बत से चीनी तुर्किस्तान तक फैला हुआ है।

आरंभ-युग
(६४०-८२३ ई०)

स्रोङ्-गच़न्-गसम्-पो के जन्म (६१७ ई०) से पूर्व भोट देश छोटी-छोटी सर्दारियों में बँटा था। स्रोङ्-ब्च़न् का जन्म मध्य तिब्बत के उष्णतम प्रदेश कोङ्-पो में हुआ था। कृषि के साथ सभ्यता का भी आरंभ इसी प्रदेश में होना स्वाभाविक था। परंपरा तो बतलाती है कि स्रोङ्-ब्च़न् का प्रथम पूर्वज कोसलराज प्रसेनजित् (ई० पू० पाँचवीं-छठीं शताब्दी) का पुत्र था। जो भी हो, इसमें तो शक नहीं कि स्रोङ्-ब्च़न् का वंश और उसका प्रदेश अधिक उन्नतावस्था में था। यह प्रदेश औरों की अपेक्षा अधिक घना भी बसा था। बाहर के राजाओं और सम्राटों की शान-व-शौकत की कथायें यहाँ पहुँच चुकी थीं। बाप के मरने के बाद तेरह वर्ष की अवस्था में ही स्रोङ्-ब्च़न् अपने छोटे राज्य का स्वामी बना। किंतु वह उतने पर संतुष्ट रहने वाला कब था? अपने समकालीन सम्राट् हर्षवर्धन की भाँति उसे भी दिग्विजय की सूझी। निडर और कष्ट सहने में पटु अपने भोट-योद्धाओं को संगठित कर उसने एक सुदृढ़ सेना बनाई, और द्बुस (मध्य) और ग्च़ङ् के प्रदेशों को अपने अधिकार में कर, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अपने सैन्य बल द्वारा उसने पश्चिम में गिल्गित, उत्तर में चीनी तुर्किस्तान तक को ही नहीं जीत लिया, बल्कि नेपाल के राजा तथा चीन के सम्राट को भी कुछ प्रदेशों के साथ अपनी कन्यायें देने पर बाध्य किया।

इस प्रकार विजयी भोट देश का सभ्य दुनिया में प्रवेश हुआ। स्रोङ्-ब्च़न् सारे भोट और पार्श्ववर्ती प्रदेशों का सम्राट बना।

इस विशाल साम्राज्य के संचालन के लिए उसे कई बातें करनी पड़ीं, जिसमें पहिली बात थी राजधानी को ब्रह्मपुत्र उपत्यका से हटाकर उसके लिए द्वुस्-छु नदी के तट पर ल्ह-स (ल्हासा) नगर का निर्माण करना। इसके पूर्व जो र (र्व)-स (अज-भूमि) था, वह अब ल्ह-स (देवभूमि) हो गया। ६४० ई० में नेपालाधिपति अंशुवर्मा की कन्या ख्रि-चु न् सम्राट् के विवाहार्थ ल्हासा पहुँची। दूसरे वर्ष चीन-राजकन्या कोङ्-जो भी राजामात्य म्गर् के साथ ल्हासा आई। इससे पूर्व ही सम्राट् ने यह अनुभव किया था कि इतने बड़े राज्य का संचालन एक लिपि के बिना सुकर नहीं। इसीलिए वह थोन्-मि (थोन्-गाँव-निवासी) अनु के पुत्र को सोलह साथियों[1] के साथ भारत में विद्याध्ययन के लिए भेज चुका था। नेपाल-राज-कन्या थोन्-मि के साथ ही ल्हासा पहुँची।

नेपाल-राजकुमारी अपने साथ अक्षोभ्य, मैत्रेय और चंदन की तारा की मूर्त्तियाँ ले आई। उधर चीन-राजकन्या ने एक पुरातन बुद्ध-प्रतिमा— जो किसी समय भारत से मध्य-एशिया और वहाँ से चीन पहुँची थी—दहेज में पाई। चीन-कुमारी रानी कोङ्-जो हुई। उसने अपनी प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने के लिए ल्हासा नगर के उत्तरी भाग में र-मो-छे का मंदिर बनवाया। नेपाल-कुमारी रानी ख्रि-चुन् के पास इतना धन न था कि वह अपनी मूर्त्तियों के लिए मंदिर बनवाती। सम्राट स्रोङ्-ब्च़न् को जब यह मालूम हुआ, तो उसने एक जलाशय पटवाकर, ल्हासा नगर के मध्य में ऽख्रुल्-स्नङ् का सुन्दर मंदिर बनवाया, जिसे आज-कल भट्टारक (स्वामि)-गृह कहते हैं।

थोन्-मि ने राजा के आदेशानुसार भोट-भाषा लिखने के लिए एक लिपि बनाई जो कश्मीर की उस समय की लिपि के समान थी। भोट-भाषा में उतने स्वरों की आवश्यकता न थी, इसलिए उसने अ को छोड़ इ-उ-ए-ओ यह चार स्वर बनाए। अ को लेकर व्यंजनों की संख्या तीस की। वर्गों के चतुर्थ अक्षर (घ, झ इत्यादि) और मूर्धन्य ष अनावश्यक होने के कारण छोड़ दिए गए। साथ ही विशेष उच्चारण के लिए च़, छ़, ज़, श़, स़, ऽ— इन छः नए अक्षरों का निर्माण करना पड़ा। थोन्-मि ने स्वयं भोट-भाषा का प्रथम व्याकरण बनाया।

---

१. ओबरमिलर, 'मु-स्तोन्', भाग २, पृ० १४३।

स्रोङ्-ब्चन् ने लिपि और व्याकरण आदि के सीखने के लिए अपना चार वर्ष का समय दिया। ल्हासा के लोह-पर्वत (ल्चग्सू-रि) में उत्कीर्ण वह गुफा आज भी दिखलाई जाती है, जिसमें रहकर स्रोङ्-ब्चन् चार वर्ष तक इस नई लिपि और व्याकरण का अभ्यास करता रहा।

कहते हैं, मिट्टी के बर्तन, पनचक्की और करघे का प्रचार भी इसी सम्राट के समय में हुआ। जो भी हो, इसमें तो शक नहीं कि सम्राट स्रोङ्-ब्चन् तिब्बत का एक सुशासक ही न था, बल्कि वह भोट देश के आने वाले साहित्य, धर्म, राजनीति आदि सभी का निर्माता था। अपनी दोनों बौद्ध रानियों और अमात्य थोन्-मि के प्रभाव से वह बौद्ध हुआ। बौद्धधर्म ने अब एक अशिक्षित जाति को सुसंस्कृत बनाने का अवसर पाया। कला-कौशल, आचार-व्यवहार, शिक्षण-अध्ययन, सभी के लिए चीनी और भारतीय बौद्ध विद्वानों को खुला अवसर मिला। उन्होंने बड़ी उदारता से काम लिया। यह कोशिश न की, कि इस अशिक्षित जाति के (जिसका न कोई पुराना साहित्य था, न जिसकी कोई उन्नत संस्कृति थी) व्यक्तित्व को मिटाकर उसे भारतीय या चीनी बनाने की कोशिश करते। उन्होंने बहुत सी बातें भोट जाति को दीं, किन्तु सबका भोटीकरण करके। बौद्ध धर्म-ग्रंथों के अनुवाद करने के लिए भारतीय पंडित कुसर (या कुमार)-नेपाली शीलमंजु, कश्मीरी तुन, चीनी भिक्षु महादेव, तथा थोन्-मि और उसके शिष्य धर्मकोश एवं ल्ह-लुङ्-छोस्-र्जे-द्पल् नियुक्त हुए। थोन्-मि की आठ पुस्तकों में से अब कुछ ही बाकी हैं। शेष पुराने अनुवाद नहीं मिलते। कारण यह है कि आरंभ के अनुवाद उतने अच्छे नहीं थे, इसलिए पीछे के सुंदर अनुवादों के सामने उनका प्रचार नहीं हो सका। कहा जाता है, थोन्-मि ने 'करंडव्यहसूत्र', 'रत्नमेघ-सूत्र', और 'कर्मशतक' के अनुवाद किए थे। चीनी आचार्यों ने विशेषतः गणित और वैद्यक की पुस्तकों के अनुवाद किये। इस काम में भारत, ली (चीनी तुर्किस्तान) और चीन तीनों देशों के बौद्ध विद्वानों ने सहयोग दिया था। ली देश के दो भिक्षुओं ने सम्राट की जीवनी भी लिखी थी।

बासठ वर्ष के सुदीर्घ और प्रशांत शासन के बाद ६८८ ई० में ८२ वर्ष की अवस्था में सम्राट स्रोङ्-ब्चन् ने ल्हासा के उत्तर वाले फन्-युल प्रदेश के सल-मी स्थान में अपना शरीर छोड़ा। उसकी मृत्यु के बाद सम्राज्ञी कोङ्-जो की आज्ञा से चीन से आई बुद्ध मूर्ति भी ऽख्रु ल्-स्नङ् में लाकर स्थापित की

गई, और आज तक वहीं है।

सम्राट् मङ्-स्रोङ्-मङ्-ब्च़न् (६१८-७१२ ई०)—सम्राट् स्रोङ्-ब्च़न् को नेपाली रानी ख्रि-चुन् से एक कुमार गुङ्-स्रोङ्-गङ्-ब्च़न् पैदा हुआ था, किंतु वह पिता के जीवन ही में जाता रहा। पिता के मरने पर चीनी रानी का पुत्र मङ्-स्रोङ्-मङ्-ब्च़न् पंद्रह वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठा। पिता के महान् व्यक्तित्व ने इसके काम को यद्यपि ढाँक लिया, तो भी एक बार इसे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिला। स्रोङ्-ब्च़न् की मृत्यु के बाद, (यद्यपि नया सम्राट चीन-राजकन्या का पुत्र था, तो भी) चीनियों ने भोट की शक्ति को निर्बल समझ उनसे युद्ध छेड़ा, किन्तु चीनियों को हारना पड़ा। धार्मिक बातों में इस सम्राट् ने तथा इसके पुत्र दुर्-स्रोङ् (७१२-३० ई०) ने अपने पूर्वज का अनुसरण किया। दुर्-स्रोङ् ने चीन-सम्राट् की कन्या वुन्-शिङ्-कोङ् से ब्याह किया था।

ख्रि-ल्दे-ग्चुग्-ब्र्तन् (७३०-८०२ ई०)—अपने पिता दुर्-स्रोङ् के बाद राजगद्दी पर बैठा। इस बार भी चीन ने अपने खोए हुए प्रदेशों को छीनना चाहा। गिल्गित के लिए एक खासी लड़ाई छिड़ गई। अब की बार भी चीन को हारना पड़ा। चीन-सम्राट् ने अपनी कन्या चिन्-चेङ् (या ग्यिम-क्य) को भोट-युवराज ऽजद्-छ्र-ल्ह-द् पोन् के लिए प्रदान किया। जिस वक्त राजकुमार अपनी भावी पत्नी से मिलने जा रहा था, उसी समय किसी आकस्मिक घटनावश उसका शरीरांत हो गया। अंत में राजकुमारी का सम्राट् ग्चुग्-बर्तन् के साथ ब्याह हुआ। इस ब्याह के दहेज में भोटराज को ह्वाङ्-हो नदी तटवर्ती चिन्-चु और कु-ए-इ प्रदेश मिले। (ब्लन्-क) मूलकोष और (ङग्) ज्ञानकुमार ने इस समय कुछ बौद्ध ग्रंथों के अनुवाद किए, जिनमें 'सुवर्ण प्रभासोत्तम सूत्र' मुख्य था।

शांतरक्षित-युग (८२३-१०४२ ई०)

ख्रि-स्रोङ्-ल्दे-ब्च़न् (८०२-४५ ई०) सम्राट ख्रि-ल्दे-ग्चुग-ब्र्तन् को चीन-राजकुमारी से लोह-अश्व वर्ष (७९० ई०) में ब्सम्-यस् के पास एक पुत्र हुआ। यही आगे चलकर भोट देश का अशोक बना। अभी यह तेरह वर्ष का ही था कि इसके पिता का देहांत हो गया, और महान् स्रोङ्-ब्च़न् की भाँति, किंतु उससे कहीं अधिक विशाल साम्राज्य का वह उत्तराधिकारी हुआ। स्रोङ्

-ब्चन् के समय से अब इन पौने दो सौ वर्षों में बहुत फ़र्क पड़ गया था। सारे भोट देश में संस्कृति का एक नया प्रवाह उमड़ आया था। राजवंश अब रक्त में अधिकतर चीनी था, क्योंकि अब तक के प्रायः सभी सम्राट चीन-राजकन्याओं से ब्याह करते आए थे, तो भी वह भाव में पूरे भोट-देशीय बने रहे। हाँ, दर्बार में चीनी विद्वानों का भी प्रभाव था, विशेषकर धर्माचार्य तो कितने ही चीन-देशीय थे।

स्रोङ्-ब्चन् के समय (६४० ई०) में बौद्ध धर्म के प्रवेश से पूर्व भी भोट में एक प्रकार का धर्म प्रचलित था, जो अधिकतर भूत-प्रेत की पूजा पर निर्भर था, जिसे कि बोन्-धर्म कहते हैं। यद्यपि बौद्ध धर्म ने बहुत उदारता दिखलाई (जहाँ तक कि उनके कितने ही पूजा-प्रकारों से संबंध था) तो भी दोनों धर्मों में प्रधानता के लिए संघर्ष जारी रहा। ख्रि-स्रोङ्-ल्दे-ब्चन् के बाल्य-काल में बौद्ध-विरोधी मंत्रियों का इतना प्राबल्य हो गया, कि उन्होंने ख्रुल्-स्न्ङ् से पहले तो बुद्ध-मूर्ति को हटाकर चीन भेजना चाहा, किंतु पीछे उसे जमीन के भीतर गाड़ दिया, और मंदिर को कसाई खाने के रूप में परिणत कर दिया। उसी समय दो-एक मंत्रियों पर कुछ आकस्मिक आपत्तियाँ पड़ीं, जिससे डरकर उन्होंने मूर्ति नेपाल की सीमा के समीप वाले मङ्-युल् प्रदेश के स्क्यिद्-रोङ् स्थान में भेज दी।

तरुण सम्राट को पढ़ते समय अपने पूर्वजों के चरित्रों को पढ़ने का भी अवसर मिला। उस समय उसे अपने पूर्वजों की बौद्ध धर्म पर अपार श्रद्धा का पता लगा। उसने छिपाए हुए ग्रन्थों की खोज कराकर उन्हें चुपचाप पढ़ना शुरू किया और अंत में उसकी भी पूर्वजों-जैसी ही बौद्ध धर्म पर आस्था हो गई। उसने दो चीनी विद्वानों में और गो तथा कश्मीरी पंडित अनंत को धर्म-ग्रन्थों के अनुवाद के काम में लगाया। किंतु बोन्-धर्मी मंत्रियों के विरोध के कारण उन्हें मङ्-युल् भेज देना पड़ा। पंडित अनंत और चीनी विद्वान् तो मङ्-युल् ही में ठहरे, जहाँ का तत्कालीन प्रांताधिपति बौद्ध था, किंतु ग्सल्-सनङ्—जो कि आगे चलकर ये-शेस्-द्वङ-पो (ज्ञानेंद्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ—वहाँ से भारत चला गया। महाबोधि (बोधगया) के दर्शन के बाद वह नालंदा पहुँचा। वहाँ उसने आचार्य शांतरक्षित के बारे में सुना। किंतु आचार्य उस समय वहाँ न थे। नेपाल पहुँचने पर सौभाग्य से उसे आचार्य का दर्शन हुआ। ज्ञानेंद्र के आग्रह पर आचार्य मङ्-युल् पधारे। कुछ दिनों वहाँ रहकर वह फिर नेपाल लौट गए।

हाँ, यह याद रखना चाहिए, कि उस समय मध्यभारत (युक़्त-प्रांत, बिहार) से तिब्बत जाने का प्रधान रास्ता नेपाल और स्क्यिद्-रोङ् (मङ्-युल्) होकर ही था। ज्ञानेंद्र को आचार्य शांतरक्षित के सत्संग से बहुत लाभ हुआ।

इस सम्राट् के समय में भी चीन ने भोट की तलवार से परीक्षा ली। भोट सेना विजयी हुई। इस विजय की कथा उसी समय एक पाषाण-स्तंभ पर लिखी गई, जो अब भी ल्हासा में पोतला के नीचे मौजूद है।

अब ज्ञानेंद्र मङ्-युल् से ल्हासा गया। सम्राट् से धर्म-चर्चा हुई। सम्राट् और कितने ही अमात्य बौद्ध धर्म को फिर उसके पूर्व-स्थान पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे, किंतु बलशाली मंत्री मा-शङ्-ख्रोम-प-स्क्येद् के सामने किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी। अंत में सम्राट् और अन्य अमात्यों की राय से मा-शङ् जीवित ही दफ़न कर दिया गया और इस प्रकार बोन्-धर्म की शक्ति हमेशा के लिए क्षीण हो गई। अब सम्राट् की आज्ञा से ज्ञानेंद्र आचार्य शांतरक्षित को बुलाने गया। आचार्य के लिए सबसे बड़ी दिक्कत भाषा की थी, किन्तु कश्मीरी पंडित अनंत बहुत वर्षों तक तिब्बत में रहने के कारण भोट-भाषा का अच्छा ज्ञान रखते थे। आचार्य संस्कृत में बोलते थे, और वह उसका उल्था कर दिया करते थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि भोट-सम्राट ने नालंदा के इस अद्‌भुत विद्वान का खूब सम्मान किया। ल्हासा पहुँचकर चार मास तक आचार्य राजमहल में दश कुशल (शुभकर्म), अठारह धातु और द्वादशांग प्रतीत्यसमुत्पाद पर व्याख्यान देते रहे। सम्राट उनका बड़ा ही अनुरक्त शिष्य हो गया। इसी समय नदी की बाढ़ से फङ्-थङ् स्थान बह गया, लोहितगिरि (मर-पो-रि) पर बिजली गिरी और देश में ढोरों की बीमारी फैल गई। लोगों ने शोर किया, कि यह आचार्य के उपदेश से रुष्ट हुए तिब्बत के देवताओं के प्रकोप का फल है। लाचार, इच्छा न रहते हुए भी सम्राट आचार्य को कुछ दिनों के लिए वापस भेजने पर मजबूर हुए।

कितने ही समय के बाद सम्राट ने ज्ञानेंद्र को धर्म-ग्रन्थों के संग्रह के लिए चीन और सङ्-शि (चीन) भिक्षु को तीस साथियों के साथ आचार्य शांतरक्षित को बुलाने के लिए भारत भेजा। ज्ञानेंद्र के चीन से लौटने पर भी जब आचार्य नहीं आए, तो सम्राट ने ज्ञानेंद्र को भी रवाना किया। आचार्य शांतरक्षित ७५ वर्ष की बुढ़ापे की अवस्था में भी धर्म-प्रचार के उत्तम अवसर को हाथ से कब छोड़ने वाले थे। वह फिर तिब्बत पहुँचे। ब्रह्मपुत्र की उपत्यका के ब्सम्-यस्

(सम्-ये) में उनका निवास कराया गया।

यद्यपि बौद्ध धर्म का तिब्बत में प्रवेश प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था, किन्तु अब तक न कोई भोट-देशीय भिक्षु बना था, और न वहाँ कोई मठ ही स्थापित हुआ था। राजा की इच्छानुसार आचार्य ने ब्रह्मपुत्र से प्रायः दो मील उत्तर एक भूमि मठ के निर्माण के लिए चुनी। यहीं मगधेश्वर महाराज धर्मपाल (७६९-८०९ ई०) के[१] बनवाये उड्यंतपुरी (बिहार-शरीफ) महाविहार के नमूने पर बसम्-यस् विहार की नींव डाली गई। बिहार का आरंभ ८२३ ई०[२] में हुआ, और समाप्ति ८३५ ई० में। मठ के मध्य में सुमेरु की भाँति प्रधान विहार (मंदिर) बनाया गया, और चारों तरफ चार महाद्वीप और आठ उपमहाद्वीपों की भाँति भिक्षुओं के रहने के लिए बारह ग्लिङ् (द्वीप) बनाए गए। इनमें दस निम्न हैं—

(१) खङ्स्-ग्सुम्-खङ्ग्लिङ्,

(२) ब्दुद्ऽदुल्-स्ङ्ग्-प-ग्लिङ्,

(३) र्नम्-दग्-ख्रिम्स्-खङ्-ग्लिङ्,

(४) ड्गे-र्ग्यस्-व्ये-म-ग्लिङ्,

(५) ऽछल्-ग्सेर्- खङ्ग-ग्लिङ,

(६) मि-ग्यो-ब्सम्-ग्तत्-ग्लिङ्,

(७) ब्दे-स्ब्योर्-छङ्स्- पऽग्लिङ्,

(८) द्कोर्-म्ज़ोद्-पे-हर्ग्लिङ्,

(९) ज़म्-ग्लिङ्,

(१०) र्ग्य-गर्- ग्लिङ्।

दो के नामों का पता नहीं। प्रधान विहार के चारों कोनों पर, कुछ हटकर, पक्की ईटों के लाल नीले आदि रंगों वाले चार सुंदर स्तूप बनवाए गए। चक्रवाल की भाँति एक ऊँचे प्रकार से सारा मठ घेर दिया गया और चारों दिशाओं में प्रवेश के लिए चार फाटक लगाए गए। इस विहार के बनाने में बारह वर्ष लगे। जिस समय विहार तैयार हुआ होगा, उस समय यह अद्भुत

---

१. अध्यापक दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य की राय में ७४४-८०० ई०।

२. जलशश (७६३ ई०) की जगह पर अग्नि-शश गलती से लिखा मालूम होता है।

चीज रही होगी, लेकिन दुर्भाग्यवश, बारहवीं शताब्दी के आरंभ में किसी असावधानी के कारण उसमें आग लग गई, जिससे अधिकांश मकान जल गए। फिर र (र्व)-लो-च्-व-दों-र्जे- ग्रग्स् ने उसी शताब्दी में इसका पुनर्निर्माण कराया। यह मठ पहाड़ी की भुजा पर न हो तिब्बत के अन्य पुराने मठों—श-लु (स्थापित १०४० ई०), स्नर्-थङ् (स्थापित ११५३ ई०) आदि—की भाँति अथवा मध्य-भारत के पुराने मठों की भाँति, समतल भूमि पर बना है।

विहार-निर्माण आरंभ करने के समय ही राजा की इच्छा हुई, कि भोट-देशीय पुरुष भिक्षु-दीक्षा से दीक्षित किए जावें। विहार का कुछ काम हो जाने पर आचार्य ने नालंदा से सर्वास्तिवादी भिक्षुओं को बुलवाया। भिक्षु-नियम के अनुसार भिक्षु बनाना संघ का काम है, कोई एक व्यक्ति भिक्षु नहीं बन सकता। यद्यपि मध्य-भारत (युक्त-प्रांत, बिहार) से बाहर पाँच भिक्षु भी होने से कोरम पूरा हो जाता है, तो भी आचार्य ने बारह भिक्षु बुलाए, और मेष-वर्ष (८१७ ई०)—(१) ज्ञानेंद्र, (२) द्पल्-द्बयङ्स्, (३) (ग्च़ङ्) शीलेंद्र-रक्षित, (४) (र्म) रिन्-छेन्-म्छोग्, (५) (ऽखोन्) क्लुऽि-द्वङ्-पो, (६) (ग्च़ङ्) देवेंद्र-रक्षित, (७) (प-गोर्) वैरोचनरक्षित—यह सात भोट-देशीय कुल-पुत्र भिक्षु बनाए गए।

भिक्षु-संघ और भिक्षु-विहार स्थापित कर आचार्य शांतरक्षित ने भोट देश में बौद्ध धर्म की नींव दृढ़ कर दी। यहाँ एक और व्यक्ति के विषय में कुछ लिख देना आवश्यक है। तिब्बत के पुरातन भिक्षुओं द्वारा स्थापित परंपरा वाले आजकल र्जिङ्-म-प (प्राचीनक) कहे जाते हैं। यद्यपि यह लोग आचार्य शांतरक्षित को भी अपना नेता मानते हैं, तो भी अधिक श्रेय एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति पद्मसंभव को देते हैं। इसका कारण, उनकी वास्तविकता की अपेक्षा जादू तथा मंत्र में असाधारण अनुराग है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है, कि पद्मसंभव शांतरक्षित के अनुगामी भिक्षुओं में एक साधारण भिक्षु था। स्तन्-ऽग्युर में इनकी भिक्षु-नियम-संबंधी कुछ छोटी पुस्तकें भी मिलती हैं। पद्मसंभव राजा इंद्रभूति (इंद्रबोधि) का पुत्र कहा जाता है, किन्तु भारतीय परंपरा, इंद्रभूति को चौरासी सिद्धों में मानती हुई भी, उसके पुत्र पद्मसंभव के बारे में कुछ नहीं जानती। इंद्रभूति आदि-सिद्ध सरह (७५० ई०) के बाद हुआ था, फिर उसके पुत्र का ब्सम्-यस् बनने के समय तिब्बत पहुँचना भी संभव नहीं। सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है, कि एक साधारण भिक्षु पद्मसंभव को आसमान पर चढ़ाने के लिए, पीछे के र्जिङ्-म-प संप्रदाय वालों ने

तरह-तरह की अद्‌भुत कहानियाँ गढ़ीं, और इसके लिए मूल-संस्थापक आचार्य शांतरक्षित तो पीछे डाल दिए गए, और[१] पद्मसंभव की तिब्बत में बुद्ध से भी अधिक पूजा होने लगी।

अन्य कार्यों से निवृत्त हो आचार्य ने बौद्ध ग्रंथों के अनुवाद की ओर ध्यान दिया। अभी तक अनुवादों का कोई पक्का निर्धारित नियम नहीं बना था। इसीलिए मालूम होता है, इस समय के बहुत से अनुवाद पीछे अग्राह्य हो गये। आचार्य शांतरक्षित के अनुवाद किये ग्रन्थों में दिङ्‌नाग-विरचित 'हेतुचक्र' भी है, जिसे उन्होंने लो-च-व धर्मकोश की सहायता से अनुवादित किया था। सौ वर्ष की आयु में (प्राय: ८४० ई० के करीब) घोड़े के पैर-की चोट से आचार्य का देहांत हो गया। विहार के पूर्व की छोटी पहाड़ी पर उनका शरीर एक स्तूप में रखा गया। साढ़े ग्यारह सौ वर्ष तक, मानो वह उसी पहाड़ी टेकरी पर से अपने कार्य की देख-रेख कर रहे थे। ३०-३५ वर्ष हुए वह जीर्ण-शीर्ण स्तूप गिर पड़ा, और आचार्य का अस्थिमय शरीर नीचे गिर गया। वहाँ से जमा कर आचार्य शांतरक्षित का कपाल और कुछ हड्डियाँ इस समय प्रधान मंदिर में शीशे के अंदर रखी गई हैं।

आचार्य शांतरक्षित असाधारण दार्शनिक थे, इसका हाल ही में, संस्कृत में प्रकाशित उनके दार्शनिक ग्रंथ 'तत्व'[२]-संग्रह' से पता लगता है। वह अपने समय के बौद्ध, ब्राह्मण, जैन, सभी दर्शनों के प्रगाढ़ विद्वान् थे। ऐसे विद्वान् की देश में भी प्रतिष्ठा कम न थी, किन्तु यह वह समय था, जब कि भारत में साहस-मय जीवन नष्ट न हुआ था। देश में प्राप्त सम्मान का खयाल छोड़ ७५ वर्ष की उम्र में हिमालय की दुर्गम घाटियों को पार करने को वह तैयार हो गए, जब उन्होंने देखा, कि इस प्रकार वह अपने धर्म की सेवा कर सकते हैं। इस त्याग के लिए ही उनका नाम बोधिसत्व पड़ा, और आज भी तिब्बत में अधिकांश लोग उन्हें आचार्य शांतरक्षित की जगह म्खन्-छेन् (महापंडित)

१. जैसे महायान ने पालि-सूत्रों के अल्प प्रसिद्ध सुभूति को सारी प्रज्ञापारमिताओं का उपदेष्टा बनाकर उसे सारिपुत्र और मौद्‌गल्यायन से भी अधिक महत्वशाली बना डाला, वैसे ही ञिङ्-प वालों ने पद्मसंभव के लिए किया।

२. धर्मकीर्ति के 'वादन्याय' पर आपकी एक विस्तृत टीका राहुलजी को मिली थी जो मूल ग्रन्थ के साथ प्रकाशित हो चुकी है। इस टीका से भी पता चलता है कि शान्तरक्षित का पांडित्य कितना अगाध था।

बोधिसत्व के नाम से ही ज्यादा जानते हैं।

आचार्य शांतरक्षित के बाद उनके शिष्य द्पल्-द्बयङ्स् (श्रीघोष) संघ-नायक बने। स्रोङ्-ब्चन् के काल से ही भोट में चीनी बौद्ध विद्वानों की प्रधानता थी, यद्यपि कभी-कभी कुछ भारतीय विद्वान् भिक्षु भी वहाँ पहुँच जाते थे। सम्राट ख्रि-स्रोङ्ल्दे-ब्चन् की गंभीर ज्ञानपिपासा ने उन्हें बौद्ध धर्म के मूल-स्रोत भारतवर्ष की ओर आकृष्ट किया। आचार्य शांतरक्षित के पहुँचने के बाद तो अब भारतीय भिक्षुओं की प्रधानता हो गई। किंतु, आचार्य के देहांत के बाद महत्वाकांक्षी चीनी भिक्षुओं ने विवाद खड़ा किया, और वह भी एक सिद्धांत की आड़ में। उन्होंने उपदेश देना शुरू किया कि सारे कर्मों को छोड़कर परम निष्कर्मण्यता का आश्रय लेना ही बुद्ध-पद की प्राप्ति का एकमात्र साधन है। श्रीघोष इसके विरुद्ध, यथार्थ सिद्धांत का प्रतिपादन करते रहे। धीरे-धीरे स्तोन्-मुन्-प (अकर्मण्यतावादी या सद्योवादी) सम्प्रदाय का जोर बढ़ने लगा, और शांतरक्षित के अनुयायी चेन्-मिन्-प (कर्मण्यतावादी, या क्रमिकवादी) का बल घटने लगा। इस झगड़े से घबड़ा कर ज्ञानेंद्र ब्सम्-यस् छोड़ दक्षिण ल्हो-ब्रग् में ध्यान और एकांत चिंतन के लिए चले गए। जब राजा ने कहा, कि सिद्धान्त और आचार्य दोनों में सबको आचार्य बोधिसत्व के सिद्धांत को मानना चाहिए, तो अकर्मण्यतावादी दल ने कर्मण्यतावादियों को मार डालने की धमकी शुरू की। अंत में इस झगड़े को मिटाने का उपाय जानने के लिए राजा ने ज्ञानेंद्र के पास आदमी भेजा। दो बार ज्ञानेंद्र ने आने से इन्कार कर दिया, किंतु तीसरी बार वह राजा के पास आए। राजा के पूछने पर उन्होंने बताया कि हमारे आचार्य ने कहा था, कि यदि कोई विवाद खड़ा हो, तो हमारे शिष्य कमलशील को बुलाना। अपने गुरु की भाँति आचार्य कमलशील भी नालंदा के एक महान् विद्वान् थे। शांतरक्षित के ५००८ श्लोकों के दार्शनिक ग्रंथ 'तत्व संग्रह' पर इन्होंने एक विद्वतापूर्ण पंचिका लिखी है। यह दोनों ग्रन्थ बड़ोदा की गायकवाड़-ओरियंटल-सीरीज़ में छप चुके हैं।

अकर्मण्यतावादियों के नेता चीनी भिक्षु ह्वशङ् को जब पता लगा, तो उसने अपने पक्ष के प्रमाण में 'ध्यान-स्वप्न-चक्र' नामक ग्रंथ लिखकर, महायान सूत्रों से बहुत से प्रमाण जमा कर डाले। इसने अपने शिष्यों को भी इस बड़े शास्त्रार्थ के लिए तैयार कर लिया। आचार्य कमलशील के पहुँचने पर, शास्त्रार्थ का समय नियत हुआ। सम्राट ने स्वयं मध्यस्थ का आसन ग्रहण किया।

दाहिंनी ओर अकर्मण्यतावादी और उनके नेता ह्वशङ् (भिक्षु)[१] बैठे, बाईं ओर आचार्य कमलशील, ज्ञानेंद्र, श्रीघोष और दूसरे लोग। सम्राट् ने दोनों पक्षों के मुखियों के हाथ में फूल की मालाएँ दे दीं, और कहा, जो हारे वह विजेता को माला दे और यहाँ से हमेशा के लिए चला जावे। ह्वशङ् ने पहले अपने पक्ष के समर्थन में भाषण दिया, जिसका उत्तर आचार्य कमलशील ने दिया। इसके कहने की आवश्यकता नहीं, कि शास्त्रार्थ में दुभाषिया से काम लिया जाता था। अकर्मण्यतावादियों की अंत में पराजय हुई। वह आचार्य के हाथ में माला देकर देश से निकल गए।

पीछे ह्वशङ् ने धन-लोभ देकर चार चीनी कसाइयों को भेजा, जिन्होंने आचार्य कमलशील को मार डाला। ज्ञानेंद्र ने भी शोकाक्रांत हो निराहार से प्राण त्याग दिए, और सम्राट भी ६९ वर्ष की अवस्था में (८०२ ई०) परलोक-गामी हुए।

इस समय आचार्य विमलमित्र, बुद्धगुह्य, शांतिगर्भ और विशुद्धसिंह ने भोट-देशीय लो-च़-व (अनुवादक)[२]—धर्मालोक, (बन-दे) र्नम्-म्खऽ, (स्गो), रिन्-छेन्-स्दे, र्नम-पर-मि-तोग्-प और शाक्य-प्रभ की सहायता से कितने ही ग्रंथों के अनुवाद किए। तो भी अभी वास्तविक अनुवाद का काल आरंभ न हुआ था।

मु-नि-ब्च़न्-पो (८४५-४६ ई०)—सम्राट् ख्रि-स्रोङ् वीर थे, किन्तु उससे भी अधिक वह धार्मिक थे। उनके विचारों का असर उनकी संतान पर पड़ा। जब उनके बाद उनका पुत्र मुनि-ब्च़न्-पो गद्दी पर बैठा, तो वह दूसरा ही स्वप्न देखने लगा। उसका पिता और सारा घर धार्मिक शिक्षा, विशेषकर बोधिसत्व-आदर्श (अर्थात् दूसरों के हित के लिए तन, मन, धन ही नहीं, हाथ में आई अपनी मुक्ति तक का परित्याग करना) से सराबोर था। तरुण सम्राट् ने अपने आस-पास प्रजा में दरिद्रता देखी, जो दरिद्र नहीं थे, उन्हें भी उसने अपने से अधिक धनी की शान-व-शौकत तथा अपमान-भरे बर्ताव से असंतोष की

---

१. 'ह्वशङ्' यह चीनी शब्द है, जिसका अर्थ भिक्षु है। इस ह्वशङ् का असली नाम मालूम नहीं।

२. 'लो-च़-व' शब्द 'लोक' और 'चक्षु' दो शब्दों के आदि अक्षरों से मिलकर बना है। चाहे वह लोग लोक के चक्षु न भी हों, किन्तु इसमें तो शक नहीं कि भारतीय आचार्यों के लिए—जो भोट-भाषा से अनभिज्ञ थे—वह अवश्य चक्षु थे।

भट्ठी में जलते देखा। वह सोचने लगा, किस प्रकार इस दुःख का अंत किया जावे। अंत में उसकी समझ में आया कि धन का सम-वितरण ही इसका एक मात्र उपाय है। इस प्रकार ८४५-४६ ई० में उसने आर्थिक साम्यवाद का प्रयोग करना शुरू किया। किंतु इतने बड़े प्रयोग के लिए देश में क्षेत्र तैयार न था। श्रम के सम-वितरण के बिना कभी भी अर्थ का सम-वितरण सफल नहीं हो सकता। एक बार धन का सम-वितरण हो जाने पर आलसियों से कोई काम लेने वाला न रहा, थोड़े दिनों में खा-पीकर वह फिर फ़ाक़ेमस्त हो गए, और दूसरे मेहनती लोगों के पास फिर संपत्ति जमा होने लगी। सम्राट् ने एक के बाद एक तीन बार तक अर्थ का सम-विभाग किया। तीसरी बार के बाद यह प्रयोग दूर के लोगों को ही नहीं, बल्कि उसकी माँ को भी असह्य हो गया, और इस प्रकार उन्नीस मास के शासन के बाद ही, माता द्वारा दिए गये विष से, इस महात्मा की मृत्यु हुई। मुनि-ब्चन्-पो को कुछ लोग पागल कहेंगे, किंतु यदि वह पागल था, तो एक पवित्र आदर्श के पीछे। आज-कल जब कि मननशील पुरुषों की विचार-धारा संसार को साम्यवाद की ओर ले जा रही है, इस साम्यवाद के शहीद का आदरपूर्वक स्मरण ज़रूर होगा।

ख्रि-ल्दे-ब्चन्-पो या सद्-न-लेग्स् (८४७-८७७ ई०)—मुनि ब्चन्-पो के बाद उसका भाई ख्रि-ल्दे-ब्चन्-पो सिंहासन पर बैठा। इसका भी बौद्ध धर्म पर स्नेह अपने पिता और भाई से कम नहीं था। सुदूर पश्चिम बल्तिस्तान के स्कर्-दों नगर में इसने बौद्ध-मंदिर बनवाया। अब तक कितने ही ग्रंथों के अनुवाद भोट भाषा में हो चुके थे, किंतु अभी तक अनुवाद के शब्दों और भाषा में किसी ख़ास नियम का पालन नहीं किया जाता था। जिसको जो प्रतिशब्द अच्छा लगा, वह उसी का प्रयोग करता था। अश्ववर्ष (८५० या ८६२ ई०) में सम्राट् ने अनुवाद करने वाले भारतीय पंडित जिनमित्र, सुरेंद्रबोधि, शीलेंद्रबोधि, दानशील, बोधिमित्र तथा उनके सहायक भोट-विद्वान् रत्नरक्षित, धर्मताशील, ज्ञानसेन (ये-शेस्-स्दे), जयरक्षित, मंजुश्रीवर्म, रत्नेंद्रशील से कहा कि पहले देवपुत्र (मेरे) पिता के समय आचार्य बोधिसत्व, ज्ञानेंद्र, ज्ञानदेवकोष, ब्राह्मण, अनंत आदि ने अनुवाद किए, किंतु उन्होंने एक ऐसी भाषा का निर्माण किया जो देशवासियों के समझने लायक नहीं है। चीन, ली, सहारे आदि की भाषाओं के अनुवाद से प्रत्यनुवाद किए गए थे, जिनमें प्रतिशब्द का कोई नियम नहीं रखा गया। इसकी वजह से धर्मग्रंथों के समझने में कठिनाई होती है। इसलिए आप लोग अब

सीधे संस्कृत से अनुवाद करें, और प्रतिशब्दों की एक तालिका बना लें। अनुवाद का एक नियम हो, जिसका उल्लंघन न होना चाहिए। पिछले अनुवादों का फिर से संशोधन कर देना चाहिए।

इस प्रकार नवीं शताब्दी के मध्य से संस्कृत ग्रंथों के नियमबद्ध अनुवाद भोट भाषा में होने लगे। इन अनुवादों में प्रतिशब्द चुनते समय संस्कृत के धातु-प्रत्ययों का भोट भाषा के धातु प्रत्ययों से मेल होने का पूरा खयाल रखा गया है, और संस्कृत के हर एक विशेष शब्द के लिए एक-एक शब्द नियत कर दिया गया है। उदाहरणार्थ—छोस्-ऽ ज़िन (धर्म-धर), छोस्-स्क्योङ् (धर्मपाल)। हाँ, सङ्स-र्ग्यस (बुद्ध), ब्यङ्-छुप् (बोधि) आदि कुछ शब्द जो पिछली दो शताब्दियों में बहुप्रचलित हो गये थे, उन्हें उन्होंने वैसा ही रहने दिया। प्रतिशब्दों को चुनकर उन्होंने पृथक् पुस्तकें बना लीं, जो 'व्युत्पत्ति' के नाम से अब भी स्तन्ऽग्युर् के भीतर मौजूद हैं[१]। महायान तथा दूसरे सूत्रों का अधिकांश अनुवाद इसी समय का है। इस समय कुछ तंत्र-ग्रंथों के भी अनुवाद हुए थे। इस समय के अनुवादों में नागार्जुन, असंग, वसुबंधु, चंद्रकीर्ति, विनीतदेव, शांतरक्षित, कमलशील आदि के कितने ही गंभीर दर्शन-ग्रंथ भी हैं। जिनमित्र, ये-शेस्-स्दे, धर्मताशील के अतिरिक्त भोट-देशीय आचार्य द्पल्-ब्र्चेग्स् इस काल के महान् अनुवादक हैं। जितना अनुवाद-कार्य ८५०-९०० ई० में हुआ, उतना किसी काल में न हो सका।

रल्-प-चन् (८७७-९०१ ई०)—बड़े भाई (ग्लङ्) दर्-म के रहते भी पिता के मरने के बाद यही राजपद के योग्य समझा गया। यह पिता-पितामह से चले आते बौद्ध धर्म के कार्य को चलाता ही नहीं रहा, बल्कि उसके प्रति अपनी भक्ति दिखाने में इसने अपने पूर्वजों को भी मात करना चाहा। धर्मोपदेश सुनते वक्त यह अपने शिर के केशों पर रेशमी चादर बिछाकर उस पर व्याख्याता को बैठाता था। एक-एक भिक्षु की सेवा के लिए इसने सात-सात कुटुंब नियुक्त किये थे। राज-कार्य में भी भिक्षुओं को बहुत अधिकार दे रखा था। राजधानी ल्हासा का सारा ही प्रबंध एक भिक्षु के हाथ में था। राजा का पुत्र च़ङ्-मो

---

१. तिब्बत में भारतीय ग्रंथों के अनुवाद का काम भारतीय पंडित और भोट-देशीय विद्वान् मिलकर करते थे। भोट-देशीय विद्वान् लो-च़-व कहे जाते हैं। इस प्रकार भोट और संस्कृत दोनों भाषाओं का गंभीर ज्ञान एकत्रित हो जाने से भोटिया अनुवाद संसार में अद्वितीय है।

स्वयं भिक्षु हो गया। वस्तुतः यह अंधी भक्ति मर्यादा को पार कर रही थी। इसने अयोग्य व्यक्तियों को भिक्षु बनने की ओर प्रेरित किया। फिर यह सारा दोष राजा उसके स्नेहास्पद धर्म पर लगने लगा। ग्लङ्-दर्-म (जो राजपद से वंचित कर दिया गया था) और बौद्ध धर्म-विरोधी अमात्यों को यह अच्छा मौका हाथ लगा, खबर उड़ाई गई कि राजा के आदर-भाजन भिक्षु (बन्-दे) योन्-तन्-द्पल् का महारानी ङङ्-छुल्-म के साथ अनुचित संबंध है। अंत में षड्यंत्रियों ने योन्-तन्-द्पल् को मार डाला, जिस पर रानी ने आत्महत्या कर ली। स्वयं सम्राट् भी लोह-पक्षी वर्ष (९११ ई०) में ग्लङ्-दर्-म के कृपापात्र द्पस-ग्र्यल्-तो-रे और (चो-रे) लेगस्-स्म द्वारा मार डाला गया। इस प्रकार १६२ वर्ष (६४०—८०२ ई०) तक संस्कृत और सम्मानित होकर, फिर १०० वर्ष (८०२—९०१ ई०) तक असाधारण भक्ति का भाजन रहकर, अब बौद्ध धर्म ने भोट देश में बुरे दिन देखे।[१]

ग्लङ्-दर्-म (९०१—२ ई०)—भाई की हत्या कराकर ग्लङ्-दर्-म सिंहासन पर बैठा। चीनी इतिहास-लेखक दर्-म के बारे में लिखते हैं—वह शराब का प्रेमी, खेलों का शौकीन, स्त्री-लंपट, क्रूर, अत्याचारी और कृतघ्न था। यह सब होते हुए भी दर्-म को बौद्ध धर्म पर अत्याचार करने का मौक़ा न मिला होता यदि बौद्ध-भिक्षुओं ने प्रभुत्व और मान की लिप्सा से प्रेरित हो अपने प्रभाव से अनुचित लाभ उठाना न शुरू किया होता, और रल्-प-चन् बौद्ध-धर्म के प्रति मर्यादित भक्ति दिखलाते हुए अपने राजा के कर्त्तव्य का भी ध्यान रखता। ग्लङ्-दर्-म ने अपने भाई के हत्यारे द्पस्-ग्र्यल् को मंत्री का पद प्रदान किया। सभी ऊँचे पदों पर बौद्ध-विरोधियों की नियुक्ति हुई। अनुवादकों के रहने के मकान और पाठशालायें नष्ट कर दी गईं। उसने आज्ञा दी कि भिक्षु अपने धार्मिक जीवन को छोड़ गृहस्थ बन जावें। जो भिक्षु-वेष को छोड़ने के लिए तैयार न थे; उन्हें धनुष-बाण देकर शिकारी बनने के लिए मजबूर किया गया। आज्ञा-उल्लंघन करने वाले कितने ही भिक्षु तलवार के घाट उतारे गए। जो-खङ् के मंदिर से हटाकर बुद्ध-मूर्ति बालू के नीचे दबा दी गई। मंदिर का द्वार बंद करके उस पर शराब पीते हुए भिक्षुओं की तस्वीरें अंकित कर दी गईं। ल्हासा के र-मो-छे मंदिर और ब्सम्-यस् विहार के द्वार भी इसी प्रकार बंद कर दिये गए। उस वक्त अधिकांश पुस्तकें ल्हासा की चट्टानों में

१. 'थङ् शु', 'ऐंटिक्विटीज आव इंडियन टिबेट', भाग २ पृ० ९२ से उद्धृत।

छिपा दी गई थीं। (अङ्) तिङ्-ङे-ऽज़ेन-ब्स्ङ्-पो और (र्म) रिन्-छेन-म्छोग् मार डाले गये। बाक़ी पंडित और लो-च्-व देश छोड़कर भाग गये। अत्याचार के मारे बौद्ध भिक्षुओं का रहना असंभव हो गया। उस समय (ग्ऱङ्)-रब्-ग्सल्, (फो-ख्रोङ्-प, ग्यो) द्गे-ऽब्युङ्, और (स्तोद्-लुङ्-प-स्मर्) शाक्यमुनि तीन भिक्षु द्पल्-छुवो-रिके पहाड़ में एकांत जीवन बिता रहे थे। उन्होंने ख्यि-र-ब्येद्-प भिक्षु को आते देखा। पूछने पर ग्लङ्-दर्-म के अत्याचार की बात मालूम हुई। इस पर वह तीनों भिक्षु अपने 'विनय' ग्रंथों को समेट कर, एक खच्चर पर लादकर, मङ्ऽ-रिस् (मानसरोवर) की ओर भागकर चले गये। वहाँ से वह तुर्किस्तान (होर्) पहुँचे। वहाँ उन्होंने बौद्धधर्म का प्रचार करना चाहा, किंतु भाषा और जाति के भेद के कारण वह उसमें सफल न हो सके और वहाँ से दक्षिण को अम्-दो चले गये।

बौद्धों ने ग़लती की थी, और उसका दंड मिलना भी ज़रूरी था। तो भी इन पौने तीन सौ वर्षों में बौद्ध धर्म ने भोट देश की बहुत सेवा की थी। यह संभव नहीं था कि इस थोड़े से अपराध के लिए वह मिटा दिया जाता। अंत में प्रतिक्रिया का रुख बदला। लोग वस्तुतः वर्तमान को ही पूरी तरह जानते हैं। अब बौद्ध अधिकारियों के गुण-दोष तो बीती हुई वस्तु हो गये थे, लेकिन लोग दर्-म के वर्तमान अत्याचारों को देख रहे थे। अब वह उससे ऊबते जा रहे थे। उस समय (ल्ह-लुङ्) द्पल्-ग्यिर्दो-र्जे नामक एक भिक्षु येर् पऽि-ल्हस्ङिङ्-पो पार्वत्य स्थान में ध्यानरत था। उसने जब यह सब बातें सुनीं तो वह अपने को रोक न सका। उसने भीतर से सफेद और बाहर से काली एक पोस्तीन धारण की, हाथ में लोहे के धनुष-बाण लिए और फिर वह अपने सफेद घोड़े को स्याही से काला कर, उस पर सवार हो ल्हासा की ओर चल पड़ा। राजा उस समय जो-खङ् के पास स्थापित महास्तंभ (दों-रिङ्) पर खुदे लेखों को पढ़ रहा था। सवार ने घोड़े से उतरकर वंदना करने के बहाने से तीर का ऐसा निशाना मारा, कि वह जाकर ठीक राजा के कलेजे में लगा। अब वह इस घोष के साथ कि यदि किसी पापी राजा को मारना हो, तो ऐसे मारना चाहिए, घोड़े पर सवार होकर निकल भागा। ल्हासा में शोर मच गया। लेकिन जनता तो पहले ही राजा से विरक्त हो चुकी थी। कोई भी उसे न पकड़ पाया। द्पल्-दों-र्जे एक जलाशय में जाकर घोड़े की स्याही धो, अपनी पोस्तीन का सफेद हिस्सा ऊपर करके चलता बना। अपने स्थान पर पहुँच वह

'जभिधर्मसमुच्चय' (असंग), 'प्रभावती' (विनय-टीका), और 'कर्मशतक' की पोथियों को लेकर खम्स् की ओर चला गया। मरते वक्त दर्-म ने यह शब्द कहे थे—"क्यों न मैं तीन वर्ष पूर्व मारा गया, जिसमें कि मैं इतने पाप और अत्याचार से बच जाता, या तीन वर्ष बाद मारा जाता जिसमें कि मैं बौद्धधर्म को देश से मिटा सकता।"[1]

ऽोद्-स्रुङ्स् (काश्यप) (९०२-९६५ ई०)—दर्-म के मरने के बाद उसकी बड़ी रानी ने गर्भवती होने का बहाना किया, और जब ढूँढ़ने पर उसे एक लड़का मिला, तो मंत्रियों को दिखलाकर कहा—'यह मेरा लड़का है।' दाँतवाले बच्चे को देखकर मंत्री चाल समझ गये, और बोले—'अच्छा यह जावे अपनी माँ की आज्ञा-पालन करे।' इस पर माँ का आज्ञा-पालक (युम्-बर्तन्) ही उसका नाम पड़ गया। छोटी रानी का लड़का ऽोद्-स्रुङ्स् (काश्यप) गद्दी का मालिक हुआ। यद्यपि यह और इसके पुत्र द्पल्-ऽखोर्-ब-चन् (९६५-८२ ई०) ने दर्-म की भूल को नहीं दुहराया, किन्तु अब राजशक्ति क्षीण हो गई थी। इस समय राज्य के कितने ही भाग स्वतंत्र हो गये।

द्पल्-छु-वो-रि से अपनी पुस्तकें खच्चर पर लादकर भागे हुए तीन भिक्षुओं के बारे में मैं पहले कह चुका हूँ। जब वह दक्षिण अम्-दो में रहते थे, तो पता पाकर द्गोङ्स्-क बस्ती के रहने वाले एक तरुण ने उनके पास आकर प्रव्रज्या पाने की प्रार्थना की। इस पर भिक्षुओं ने उसे 'विनय' की एक पुस्तक पढ़ने को दी, और कहा, यदि यह बातें तुम्हें स्वीकार हों, तो हम तुम्हें श्रामणेर बनायेंगे। तरुण ने पढ़कर इसकी प्रार्थना की। इस पर वह श्रामणेर बनाया गया, और नाम (द्गोङ्-स्-प) रब्ग्सल् (प्रकाश) पड़ा। पीछे उसने भिक्षु बनाये जाने की प्रार्थना की, किंतु वहाँ संघ का कोरम पूरा करने के लिए पाँच भिक्षु न थे, कोरम के लिए और दो भिक्षुओं की तलाश करते हुए उसे (ल्ह-लुङ्) द्पल्-दों-र्जे मिला। प्रार्थना किये जाने पर उसने कहा, मैंने राजा को मारा है, इसलिए 'पाराजिक' अपराध का अपराधी होने से अब मैं भिक्षु नहीं रहा। फिर ढूँढ़ने पर उसे क्ये-वङ् और ग्यि-वङ् दो ह्व-शङ् (चीनी भिक्षु) मिले। इस प्रकार पंच-गण संघ बनाकर उसने भिक्षु की दीक्षा पाई। यह रब्-ग-सल् आचार्य शांतरक्षित की परंपरा को आगे चलाने वाला पुरुष हुआ। पीछे द्बुस् प्रदेश के पाँच पुरुष (कलु-मेस)-छुल्-ख्रिम्स्, शेस्-रब्-ल्दिङ्-ये-शेस्-योन्-तन्, (रग्-शि)

१. 'ऐंटिक्विटीज आव् इंडियन टिबेट', भाग २, पृष्ठ ९३३।

छुल्-ख्रिम्स्- ऽब्युङ्-ग्नस्, (शीलाकर) (र्व) छुल्-ख्रिम्स्-बलो-ग्रोस्, (शील मूर्ति) और (सुम्-प) ये-शेस्-ब्लो (ज्ञानमति), तथा ग्चङ् प्रदेश के पाँच पुरुष— गुर्-मो-(रब्-ख-प) ब्लो-स-तोन्, दों-र्जे द्वङ् फ्युग्, (शब्-स्-गो-लङ्ऽ-छोङ्ब्चन्) शेस्-रब्-सेङ्-गे, (म्ङऽ-रिस्) ऽोद-ब्र्ग्यद्, और (फो-ख्रोङ्) उ-प-दे-द्कर्-पो—यह दस व्यक्ति आकर भिक्षु रब्-ग्सल् के शिष्य हुए। इन्हीं दस भिक्षुओं ने लौटकर मध्य तिब्बत में फिर से प्रचार करना शुरू किया। दिङ् -म-प संप्रदाय के सभी मठ इन्हीं की परंपरा से सम्बन्ध रखते हैं।

दीपंकर-युग (१०४२-११०२)

स्रोङ्-ब्चन् वंश ने लगातार पौने तीन सौ वर्ष तक अपने विस्तृत साम्राज्य को कायम रखा। धर्म की असाधारण भक्ति रखते हुए भी इनमें सात पीढ़ियों तक शासक और योद्धा की योग्यता बनी रही, ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। भारत में गुप्त-सम्राटों का वंश वीर पैदा करने में मशहूर रहा है, किन्तु वह भी दो सौ वर्ष तक ही चला। मुग़ल बादशाह भी पाँच पीढ़ियों तक ही प्रबल रहे। किंतु दर्-म के बाद पतन शीघ्रता से होने लगा। द्पल् ऽखोर् व-चन् (मृ० ९८३ ई०) तक जो कुछ बचा था, वह भी उसके बाद जाता रहा। तिब्बत ख़ास ही अनेक टुकड़ों में बँट गया। क्रांति के कारण ऽखोर्-ब्चन् का दूसरा पुत्र ख्रि-स्क्यिद्-ल्दे-ञि-म-म्गोन् ल्हासा छोड़ने पर मजबूर हुआ। वह एक सौ सवारों के साथ पश्चिमी तिब्बत (म्ङऽ-रिस्) की ओर चला गया। वहाँ अपने विश्वास-पात्र सेवकों की सहायता से उसने अपने लिए स्थान बना लिया। अश्व-वर्ष (९८२ ई०) में उसने र-ल में लाल-महल बनवाया। मेष-वर्ष (९८३ ई०) में चे-शी-र्ग्य-रि नामक महल बनवाया। इसी वक्त सपुद्-रङ्स् के शासक द्गे-ब्शेस्-ब्चन् ने उसे अपनी राजधानी में बुलाया और अपनी कन्या ऽब्रो-स-ऽखोर-स्क्योङ् के साथ अपना राज्य उसे प्रदान किया। ङि-म-म्गोन ने फिर म्ङऽ-रिस्-सकोर-गसुम् (लदाख, गूगे, और स्-पु-रङ्स्) को अपने अधिकार में करके एक स्वतंत्र राज्य कायम किया। अंत में राज्य को इसने अपने तीनों पुत्रों—द्पल्-ग्यि-ल्दे (लदाख), ब्क्र-शिस्-ल्दे-म्गोन् (सपु-रङ्स्) और ल्दे-ग्चुग्-मगोन् (शङ्-शुङ् या गूगे) में बाँट दिया। ल्दे-ग्चुग्-म्गोन् का ज्येष्ठ पुत्र ऽखोर्-ल्दे राज्य को अपने छोटे भाई स्रोङ्-ल्दे के हाथ में सौंप कर स्वयं अपने दोनों पुत्रों, नागराज और देवराज के साथ भिक्षु हो गया।

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम पाद में तिब्बत में बौद्ध धर्म में बहुत विकार

पैदा हो गये थे। भिक्षुओं ने धर्म-ग्रन्थों को पढ़ना छोड़ दिया था। वह वर्षावास के तीन मास तक ही भिक्षु आचार का पालन करते थे, उसके बाद उसकी परवाह नहीं करते थे। तांत्रिक लोग मद्य और व्यभिचार को ही परम धर्मचर्या मानते थे। मठों के अधिकारी चमकीली वेष-भूषा पहिनकर, अपने को स्थविर और अर्हत् प्रकट करते फिरते थे। ऽखोरल्दे (भिक्षु बनने पर इसका नाम ये-शेस्ऽोद अर्थात् ज्ञानप्रभ पड़ा) ने स्वयं धर्म-ग्रंथों को पढ़ा था, और वह एक विचारशील व्यक्ति था। इसका तो इसी से पता लगता है, कि तंत्रों के बुद्ध-वचन होने में उसे बहुत संदेह था।[1] वह अच्छी तरह समझता था, कि बौद्ध धर्म ही उसके पूर्वजों की एक चिरस्थायी कृति है। धर्म के इस ह्रास को हटाने के लिए उसने सबसे जरूरी बात समझी—धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन। इसके लिए उसने रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो (९५८-१०५५ ई०), लेग्स्पऽिशेस्-रब् आदि इक्कीस तरुणों को चुनकर कश्मीर पढ़ने के लिए भेजा। मानसरोवर-जैसी ठण्डी जगह के रहने वाले इन नौजवानों के लिए कश्मीर भी गर्म था। अंत में दो को छोड़कर बाकी सब वहीं बीमारी से मर गए। रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो ने लौटकर पंडित श्रद्धाकर वर्मा, पद्माकरगुप्त, बुद्धश्रीशांत, बुद्धपाल, और कमलगुप्त आदि की सहायता से कितने ही दर्शन और तंत्र-ग्रंथों के भोट भाषा में अनुवाद किए। 'हस्तवाल-प्रकरण' (आर्यदेव), 'अभिसमयालंकारा-लोक' (हरिभद्र), 'वैद्यक अष्टांग-हृदयसंहिता' (नागार्जुन), 'चतुर्विपर्यय-कथा' (मातृचेट), 'सप्तगुणपरिवर्णन कथा' (वसुबंधु), 'सुमागधावदान' आदि ग्रंथों के इन्होंने अनुवाद किए। दीपंकर श्रीज्ञान (जन्म ९८२ मृत्यु १०५४ ई०) के तिब्बत पहुँचने पर और भी कितने ही ग्रंथों के भाषांतर करने में सहायता की। रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो ने गू-गे (शङ्-शुङ्),

---

१. 'ऽवु-स्तोन्', भाग २, पृष्ठ २१२।

स्पि-ति और लदाख में कई सुन्दर मंदिर बनवाए, जिनमें कई[१] एक अब भी मौजूद हैं और उनमें उस समय की भारतीय चित्रकला के सुन्दर नमूने पाये जाते हैं।

राजभिक्षु ज्ञानप्रभ ने जब देखा, कि उनके भेजे इक्कीस तरुणों में उन्नीस कश्मीर से जीवित नहीं लौट सके, तो उन्होंने सोचा कि यहाँ से भारत में विद्यार्थियों को भेजने के स्थान पर यही अच्छा होगा, कि भारत से ही किसी अच्छे पंडित को यहाँ बुलाया जावे, जो यहाँ आकर सुधार का काम करे। उन्हें यह भी मालूम हुआ, कि विक्रमशिला महाविहार में ऐसे एक पंडित भिक्षु दीपंकर श्रीज्ञान हैं। उनको बुलाने के लिए आदमी भेजा गया, किन्तु वह न आये। दूसरी बार फिर दूत भेजने की तैयारी हुई। इसके लिए कुछ सोने का संग्रह करने जब वह अपने सीमांत प्रदेश में गए हुए थे, उसी समय पड़ोसी राजा ने उन्हें पकड़ लिया। उनके उत्तराधिकारी ब्सङ्-छुप्ऽोद् (बोधिप्रभ) ने चाहा, कि धन देकर उन्हें छुड़ा लें, ज्ञानप्रभ ने कहा, वह धन भारत के किसी पंडित को बुलाने में खर्च किया जाय।

ग्यारहवीं शताब्दी में विक्रमशिला विहार (वर्तमान सुल्तानगंज, जिला भागलपुर) उत्तरी भारत में एक बड़ा ही विशाल विद्याकेन्द्र था। युवराज होने की अवस्था में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य चंपा का प्रदेशाधिकारी था। उस वक्त सुल्तानगंज की दोनों पहाड़ी टेकरियों पर उसने कुछ मंदिर बनवाये थे और उसी के नाम पर यह स्थान विक्रमशिला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पीछे पालवंशीय महाराज धर्मपाल (७६९-८०९ ई०) ने गंगा-तटवर्ती इस मनोरम स्थान पर एक सुन्दर विहार बनवाया, यही विक्रमशिला महाविहार हुआ। इस विहार के कुछ ही दूर दक्षिण में एक सामन्त राजधानी थी, जिसके यहाँ दीपंकर

१. लदाख में सुम्-दा और अल्-ची के मंदिर, और स्पि-ति का ल्ह-लुङ् मंदिर इन्हीं में से हैं। इनमें सारे ही चित्र भारतीय चित्रकारों के बनाए हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी की चित्रकला के यह सुन्दर कोश हैं। खेद है कि रक्षा का कोई प्रबन्ध न होने से यह नष्ट होते जा रहे हैं। ईंधन दुर्लभ होने के कारण तिब्बत में पक्की दीवारों का रिवाज नहीं है। दीवार अस्थायी होने से भित्तिचित्र भी अस्थायी होते हैं। फिर भी पच्छिमी तिब्बत के पुराने मठों की दीवारें कहीं-कहीं अभी तक ज्यों की त्यों मौजूद हैं। उन पर अजन्ता-शैली की तूलिका के चमत्कार अब भी देखे जा सकते हैं। वास्तव में धर्म के साथ चित्र और स्थापत्य कला भी भारत से तिब्बत पहुँच गई थी।

Indian Institute of Advanced Study
Acc. No. 140860
Date
Shimla

श्रीज्ञान का जन्म हुआ था। नालंदा, राजगृह, विक्रमशिला, वज्रासन (बोधगया) ही नहीं, बल्कि सुदूर सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) तक जाकर दीपंकर ने विद्याध्ययन किया। पीछे वह विक्रमशिला के आठ महापंडितों में एक होकर वहीं अध्यापन का कार्य करने लगे। यद्यपि पहली बार राजभिक्षु ज्ञानप्रभ के निमंत्रण को उन्होंने अस्वीकार कर दिया था, किन्तु जब राजभिक्षु बोधिप्रभ के भेजे दूतों के मुख से उन्होंने ज्ञानप्रभ के महान् त्याग की बात सुनी, तो चलने के लिए उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। इस प्रकार १०४२ ई० (जल-अश्व वर्ष) में वह मङ्-ऽ-रिस् पहुँचे। भोट देशवासियों ने उनका बड़ा स्वागत किया। पहले मानसरोवर के पश्चिम में अवस्थित थो-ग्लिङ् (शङ्-शुङ्) मठ में रहे। यहाँ उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बोधिपथप्रदीप' लिखा। १०४४ में वह स्पुरङ्स् गए। यहीं उन्हें (ऽब्रोम्-स्तोन्) ग्र्यल्-वऽि-ब्युङ्-ग्नस (१००३-६४ ई०) मिला। यह उनका प्रधान शिष्य था और तब से अन्त तक यह बराबर अपने गुरु के साथ रहा। दीपंकर (अतिशा) के अनुयायी (ऽब्रोम स्तोन् की शिष्य परंपरा वाले) ब्कऽ-दम्-प के नाम से प्रसिद्ध हुए। चोङ्-ख-प (१३५७-१४१९ ई०) का भी इसी ब्कऽ-दम्-प संप्रदाय से संबंध था और इसीलिए उसके अनुयायी द्गे-लुगस्-प (भिक्षु नियम वाले) अपने को नवीन ब्कऽ-दम्-प भी कहते हैं।

दीपंकर श्रीज्ञान ने अपने जीवन के अंतिम तेरह वर्ष तिब्बत देश में धार्मिक सुधार और ग्रंथानुवाद में बिताए। मङ्-ऽरिस से वह ग्च़ङ् और द्वुस् प्रदेशों में गए। १०४७ ई० में वह ब्सम्-यस् पहुँचे। उस वक्त वहाँ के पुस्तक भंडार को देखकर वह दंग रह गए। वहाँ उन्हें कुछ ऐसी पुस्तकें भी देखने को मिलीं जो भारत के बड़े-बड़े विद्यालयों में भी दुर्लभ थीं। १०५० ई० में वह येर्-प गए और १०५१ ई० (लोह-शश वर्ष) में उन्होंने 'कालचक्र' पर अपनी टीका लिखी। १०५४ ई० में ७३ वर्ष की अवस्था में ल्हासा से आधे दिन के रास्ते पर स्ञे-थङ् स्थान में उनका शरीरांत हुआ।

अनुवाद करने में उनके प्रधान सहायक (नग्-छो) छुल्-ख्रिम्स्-ग्र्यल् व, रिन्-छेन्-ब्स्-ङ्-पो, द्गे-वऽि-ब्लो-ग्रोस् और शाक्य्-ब्लो-ग्रोस् थे। इनके अनुवादित और संशोधित ग्रंथों की संख्या सैकड़ों है। महान् दार्शनिक भाव्य (भावविवेक) के ग्रंथ 'मध्यमकरत्नप्रदीप' और उसकी व्याख्या को इन्होंने ही (ग्र्य) च़ोन्-सेङ् और नग्-छो के दुभाषिया होते हुए अनुवादित किया था।

पंडित सोमनाथ (१०२७ ई०)—दीपंकर श्रीज्ञान के भोट पहुँचने से कुछ

पूर्व कश्मीरी पंडित सोमनाथ भोट गए। (ग्यं-चो) स-वऽि—ऽोद्-सेर की सहायता से इन्होंने 'कालचक्र ज्योतिष' का भोट भाषा में अनुवाद किया और तभी से भोट देश में वृहस्पति चक्र के ६० संवत्सरों का नया क्रम जारी हुआ। ६० संवत्सरों के एक चक्र को भोट भाषा में रब्-ऽब्युङ् (प्रभव) कहते हैं। यह प्रभाव हमारे यहाँ के भी षष्ठी संवत्सर-चक्र का आदिम संवत्सर है। लक्ष्मीकर, दानश्री, चंद्रराहुल, सोमनाथ के साथ ही भोट देश गए थे।[1]

दीपंकर श्रीज्ञान के विद्यागुरु सिद्ध महापंडित अवधूतिपा (अद्वयवज्र या मैत्रीपा भी) थे। इन्हीं के शिष्य वैशाली (वसाढ, जि० मुज़फ्फ़रपुर) के रहने वाले कायस्थ पंडित गयाधर थे। यह (ऽब्रोग्-मि) शाक्य ये-शेस् (मृत्यु १०७४ ई०) के निमंत्रण पर भोट गए और पाँच वर्ष रहकर इन्होंने बहुत से तंत्र-ग्रंथों के भोट भाषा में अनुवाद किए। चलते वक्त ऽब्रोग्-मि ने इन्हें पाँच सौ तोला सोना अर्पित किया। यह स्वयं भी हिन्दी भाषा के कवि थे, इनके पुत्र तिब्रूपा एक पहुँचे हुए सिद्ध समझे जाते थे। पंडित गयाधर ने (ग्यिं-जो) स-वऽि-ऽोद्-स़र् के साथ 'बुद्धकपाल-तंत्र' का अनुवाद किया था। और (ऽगोस् खुग्-प) ल्ह-ब्चस्क साथ 'वज्रडाकतंत्र'[2] का।

ज्ञानप्रभ के समय में ही लो-च़-व पद्मरुचि ने स्मृतिज्ञान कीर्ति और सूक्ष्मदीर्घ दो भारतीय पंडितों को अनुवाद के कार्य के लिए बुलाया। लो-च़-व हैजे से नेपाल में मर गया, और यह लोग भोट में पहुँच गए। इन्हें उस समय भाषा भी न आती थी। पंडित सूक्ष्मदीर्घ तो (रोङ्-प) छोस्-ब्स़ङ् के पास रहने लगे, किन्तु स्मृतिज्ञान कीर्ति ने किसी का आश्रय ढूँढ़ने की अपेक्षा भेड़ की चरवाही पसंद की। यह मालूम नहीं, कितने वर्षों तक तिब्बत के खानाबदोश ब्यङ्-प की भाँति इन्होंने चँवरी के बालों के काले तंबुओं में रह, र्त नग् में चरवाही का जीवन व्यतीत किया। स्मृतिज्ञान, मालूम होता है, कोई मस्त मौला ही थे। इस भेड़ की चरवाही में एक फायदा जरूर हुआ, वह यह कि उन्हें भोट भाषा का सुंदर अभ्यास हो गया। स्मृतिज्ञान और विभूतिचंद्र (१२०४ ई०) जैसे बहुत थोड़े ही भारतीय पंडित हैं, जिन्होंने बिना लो-च़-व की सहायता के

---

१. 'ऽबु ग्-प-छोस्-ऽब्युङ्', पृष्ठ १५२क, १९८ख, २५१ख संवत्सर चक्र के लिए परिशिष्ट १ और २ देखिए।

२. इस ग्रंथ की मूल संस्कृत प्रति ताल-पत्र पर लेखक को १९३० ई० में श़-लु विहार से प्राप्त हुई।

भारतीय ग्रंथों का भोट भाषा में अनुवाद किया हो। पीछे (स्प्यल्-से-च़ब्) ब्सोद्-नम्स्-ग्र्यल्-म्छन् के निमंत्रण पर स्म्न्-लुङ् में जाकर उसे इन्होंने बौद्ध ग्रंथों को पढ़ाया। फिर खम्स् (पूर्वीय भोट) में जाकर ऽदन्-क्लोङ्-थङ् में अभिधर्मकोश के अध्ययन के लिए एक विद्यालय स्थापित किया। इन्होंने 'चतुष्पीठ-टीका', 'वचनमुख' आदि कितने ही अपने लिखे ग्रंथों का भोट भाषा में उल्था किया।

शि-व-ऽोद् (ज्ञानप्रभ के भाई) —राजा स्रोङ्-ल्दे के पुत्र ल्ह-ल्दे थे। इनके तीन पुत्रों में बड़ा ऽोद-ल्दे राजा हुआ, और ब्यङ्-छुप्-ऽोद् और शि-व-ऽोद् दोनों छोटे लड़के भिक्षु हो गए। दीपंकर श्रीज्ञान को बुलाकर जिस प्रकार ब्यङ्-छुप्-ऽोद ने धर्म प्रचार कराया, यह पहले लिखा जा चुका है। राजा ऽोद्-ल्दे ने पंडित सुजयश्री को बुलाकर कितने ही ग्रंथों के अनुवाद कराए। शि़-व-ऽोद् (शांतिप्रभ) स्वयं अच्छा विद्वान् था। इसने जहाँ सुजन श्रीज्ञान, मंत्रकलश और गुणाकर भद्र से कितनी ही पुस्तकों के अनुवाद कराए वहाँ स्वयं आचार्य शांतरक्षित के गंभीर दार्शनिक ग्रंथ 'तत्वसंग्रह' का अनुवाद किया।

चे-ल्दे—ऽोद्-ल्दे के बाद उसका पुत्र च़े-ल्दे मानसरोवर प्रांत (शङ-शुङ् और सपु-रङ्स्) का शासक हुआ। १०७६ ई० में इसने एक अच्छा विद्यालय स्थापित किया, और (ङोंग्) ब्लो-ल्दन्-शेस्-रब् (१०५९-११०८) को उसी साल कश्मीर पढ़ने के लिए भेजा। १०९२ ई० तक ङोंग् ने कश्मीर में रहकर पंडित परहितभद्र और भव्यराज से न्याय, तथा ब्राह्मण सज्जन और अमरगोमी आदि से योगाचार के कितने ही ग्रंथों का अध्ययन किया। पंडित भव्यराज अनुपमनगर (प्रवरपुर=श्रीनगर ?) के पूर्व ओर चक्रधरपुर सिद्धस्थान में रहते थे। यही ङोंग् ने धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध न्याय-ग्रंथ 'प्रमाणवार्तिक'[१] का फिर से भोट भाषा में अनुवाद किया। पंडित परहितभद्र की सहायता से इसने धर्म कीर्ति के 'प्रमाणविनिश्चय' और 'न्यायबिंदु' के अनुवाद भी किए। च़े-ल्दे के बाद उसके पुत्र राजा द्वङ्-ल्दे और पौत्र राजा ब्क्र-शिस्-ल्दे भी ङोंग् के काम में सहायता करते रहे। कश्मीर में सत्रह वर्ष रहकर ङोंग् ने भोट में लौटकर चौदह वर्षों तक अपना काम किया। यहाँ रहते हुए उसने पंडित अतुलदास, सुमतिकीर्ति, अमरचंद्र और कुमारकलश के साथ अनुवाद का काम

---

१. प्रथम बार इसका अनुवाद दीपंकर के साथी सुभूतिश्रीशांति और द्गे-वऽ-ब्लो-ग्रोस् ने किया था।

किया। प्रसिद्ध 'मंजुश्रीमूलकल्प' का इसने पंडित कुमारकलश के साथ मिलकर उल्था किया था।

फ-दम्-प-ड्स्स्-ग्र्यस् (मृ० १११८ ई०)—१०९२ ई० में यह भारतीय पंडित सिद्ध भोट देश में आया। यह नेपाल के रास्ते अ-नम् होकर ग्लङ्-स्कोर पहुँचा था। यहाँ रहते हुए इसने कुछ ग्रंथों के अनुवाद में सहायता पहुँचाई। यह पूरा परिव्राजक था। ११०१ ई० में यह चीन गया, १११३ ई० में फिर तिब्बत आया। इसने शि-ब्येद् संप्रदाय की स्थापना की, जिसका कि एक समय भोट देश में अच्छा प्रभाव था।

इसी काल में एक और विद्वान लो-च़-व हुआ, जिसका नाम (प-छब्) ञि-म-ग्रग्स् (रविकीर्ति) है। इसका जन्म १०५५ ई० में हुआ था, अर्थात् उसी वर्ष जिस वर्ष कि महान् लो-च़-व-रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो का देहांत हुआ। इसने कश्मीर में जाकर तेईस वर्ष तक अध्ययन किया। इसने (आर्यदेव के), 'चतुःशतक शास्त्र', (चंद्रकीर्ति के) 'मध्यमकावतार-भाष्य' (पूर्णबद्र्धन की) 'अभिधर्मकोशटीका', 'लक्षणानुसारिणी', (चंद्रकीर्ति की) मूलमध्यकवृत्ति 'प्रसन्नपदा' जैसे गंभीर दार्शनिक ग्रंथों के अनुवाद से अपनी मातृभाषा के कोश को पूर्ण किया। कनकवर्मा, तिलकलश आदि पंडित इसके सहायक थे।

(मर्-प) छोस्-क्यि-ब्लो-ग्रोस्—यह सिद्ध नारोपा (नाडपाद, मृ० १०४० ई०) का शिष्य था, और तीन बार भारत में जाकर रहा था। इसने अनुवाद का काम कम किया, किन्तु यह और मि-ल-रस्-प (१०४०-११२३ ई०) जैसे इसके शिष्य अपनी विचित्र चर्या से तिब्बत में चौरासी सिद्धों के यथार्थ प्रतिनिधि थे। मि-ल-रस्-प भोट देश का सर्वोत्तम कवि ही नहीं था, बल्कि इसके निस्पृह अकृत्रिम जीवन ने इन आठ शताब्दियों में वहाँ बहुतों के जीवन में भारी प्रभाव डाला है। मर्-प, मि-ल की परंपरा वाले लोग द्कर्-ग्र्युद्-प कहे जाते हैं। भोट देश के द्रग्स्-पो, ऽब्रि-गोङ्-प, फग्-ग्रुब-पऽब्रु ग्-प स्तग्-लुङ्प और स्कर्-म-प इसी द्कर्-ग्र्युद्-प संप्रदाय की शाखाएँ हैं। कर्-म (स्कर्-म) संघराज स्कर्-म-बक्-सि-छोस्-ऽज़िन (१२०४-८३) अपने सिद्धत्व के कारण मंगोल सम्राट का गुरु हुआ था। फग्-ग्रुब्-प और ऽब्रि-गोङ्-प ने कितने ही वर्षों तक मध्य भोट पर शासन किया।

स-स्क्य-युग (११०२-१३७६ ई०)

(ऽखोन्) द्कोन्-ग्र्यल् (१०३४-११०२) नाम के एक गृहस्थ धर्माचार्य ने, ग्च़ङ् (च़ङ्) प्रदेश में १०७३ ई० में स-स्क्य नामक विहार की स्थापना की। यद्यपि इस विहार का आरंभ बहुत छोटे से हुआ, किन्तु इसने आगे चलकर बौद्ध धर्म की बड़ी सेवा की। इसके संघराजों का प्रभाव भोट देश से बाहर चीन और मंगोलिया तक पड़ा। चंगेज़ खां (चिङ्-हिर्-हान्) के शासन काल में ११२२ ई० में यहीं के संघराज ने सर्वप्रथम मंगोलिया में बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

(ऽखोन्) द्कोन्-ग्र्यल् ने व-रि-लो-च़-व (मृ० ११११ ई०) को अपना उत्तराधिकारी चुना। व-रि कितने ही समय तक भारत में जाकर वज्रासन (बोधगया) के आचार्य अभयाकर गुप्त के पास रहा था। अभयाकर गुप्त का जन्म झारखंड (वैद्यनाथ के आस-पास का प्रदेश) में क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से हुआ था[१]। यह शास्त्रों के अच्छे पंडित थे। पीछे इन्होंने अवधूतिपा के शिष्य सौरिपा से सिद्ध-चर्या की दीक्षा ली। मगधेश्वर रामपाल (१०५७-११०२) के यह गुरु थे। नालंदा और विक्रमशिला दोनों ही विश्वविद्यालयों के यह महापंडित माने जाते थे। इनका देहांत ११२५ ई० में हुआ।

व-रि ने अपना उत्तराधिकारी, मठ के संस्थापक द्कोन्-ग्र्यल् के पुत्र कुन्-द्गऽ-स्दिङ्-पो (१०९२-११५८) को चुना। उसके बाद उसके पुत्र ग्रग्स्-प-ग्र्यल् म्छन् (११४७-१२१६ ई०) विहाराधिपति हुए। यह अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने दिङ्नाग के 'न्यायप्रवेश' और 'चंडमहारोषण तंत्र' आदि ग्रन्थों के अनुवाद किए।

(खो-फु) ब्यम्स्-प-द्पल् (जन्म ११७३ ई०) इसी काल में हुआ था। यह काशिराज जयचंद के दीक्षा-गुरु मित्रयोगी[२] (जगन्मित्रानंद) को ११९८ ई० में भोट ले गया। मित्रयोगी की 'चतुरंग-धर्मचर्या' का इसने अनुवाद किया।

---

१. 'रिन्-छेन्-ऽब्युङ्-ग्नस्-ग्तम्', पृ० ४७ ख।

२. इनका जन्म राढ (पश्चिमी बंगाल) देश का था। सिद्ध तेलोपा के शिष्य ललितवज्र से इन्होंने सिद्धचर्या की दीक्षा ली थी। पीछे उडन्तपुरी विहार के प्रधान हुए। काशीश्वर महाराज जयचंद इनके शिष्य थे ('ऽब्रुग्-प-छोस्-ऽब्युङ्', पृष्ठ १५३ क; 'इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली', मार्च १९२५, पृ० ४-३०)।

१२०० ई० में कश्मीरी पंडित बुद्धश्री को बुलाकर उनके साथ इसने अभिसमयालंकार की टीका 'प्रज्ञाप्रदीप' का अनुवाद किया। इसी के निमंत्रण पर विक्रमशिला के अंतिम प्रधान-स्थविर शाक्यश्रीभद्र भोट देश में आए।

शाक्यश्रीभद्र—इनका जन्म कश्मीर में ११२७ ई० में हुआ था। बोधगया, नालंदा, विक्रमशिला उस समय सारे बौद्धजगत् के जीवित केन्द्र थे। इसीलिए यह भी मगध की ओर आए। सुखश्री इनके दीक्षा गुरु थे। रविगुप्त, चंद्रगुप्त, विख्यातदेव (छोटे वज्रासनीय), विनयश्री, अभयकीर्ति और रविश्रीज्ञान इनके विद्यागुरु थे। अपने समय के यह महा-विद्वान् थे—यह तो इसी से मालूम होता है, कि यह मगध नरेश के गुरु तथा विक्रमशिला महाविहार के प्रधान नायक थे। मुहम्मद-बिन्-बख्तियार ने जब नालंदा और विक्रमशिला को ध्वस्त कर दिया, तो यह जगत्तला[1] (बंगाल) चले गए। वहाँ कुछ दिन रहकर और संभवत: उसके भी ध्वस्त होने पर जब यह जगत्तला के पंडित विभूतिचंद्र तथा दानशील, संघश्री (नेपाली), सुगतश्री आदि नौ पंडितों के साथ नेपाल में थे, तो वहीं इन्हें ऽखा-फुलो-च़-व मिला। उसकी प्रार्थना पर यह १२०० ई० में भोट देश में आकर, दस वर्ष तक रहे। इन्होंने पुस्तक-अनुवाद का काम नहीं किया, और इनके ग्रंथ भी एकाध ही अनूदित हुए हैं, इससे जान पड़ता है, कि महाविद्वान् होते हुए भी, यह लेखनी के धनी न थे। स्-सक्य पहुँचने पर तत्कालीन विहाराधिपति ग्रग्स्-प-ग्र्यल्-मछ्न् के भतीजे और उत्तराधिकारी, कुन्-द्गऽ-ग्यल्-म्छन् (११८२-१२५१ ई०) १२२८ ई० में इनके भिक्षु-शिष्य हुए। 'प्रमाणवार्तिक' आदि कितने ही न्याय के गंभीर ग्रन्थों का उन्होंने इनसे अध्ययन किया। ब्यङ्-छुप-द्पल् और द्गे वऽि-द्पल् आदि और भी कितने ही शाक्यश्रीभद्र के शिष्य हुए। स-स्क्य संप्रदाय के पीछे इतने प्रभावशाली बनने में उसका विक्रमशिला के अंतिम प्रधाननायक से संबंध भी इसी कारण हुआ। दस वर्ष रहकर, १२१३ ई० में, शाक्यश्रीभद्र अपनी जन्मभूमि कश्मीर को लौट गए, जहाँ १२२५ ई० में ९८ वर्ष की दीर्घ आयु में इनका देहांत हुआ। इनके अनुयायी विभूतिचंद्र, दानशील आदि भोट ही में रह गए, जिनमें विभूति का भोट भाषा पर इतना अधिकार हो गया, कि उन्होंने कितने ही ग्रंथों के अनुवाद

---

१. इसे मगधराज महाराज रामपाल (१०५७-११०२ ई०) ने अपने शासन के सातवें वर्ष (१०६४ ई०) में स्थापित किया था। ('सृतन्-ऽग्युर्' अष्टसाहस्रिका-टीका के अंत में)।

बिना किसी लो-च़-व की सहायता ही के किए।

कुन्-द्गऽ-र्ग्यल्-म्छ़न, संघराज (१२१६-५१ ई०)—यह भोट देश के उन चंद धर्माचार्यों में हैं, जिन्होंने धर्म प्रचार के लिए बहुत भारी काम किया। भोट-देशीय ऐतिहासिकों के मतानुसार चंगेज़ खाँ (जन्म ११६२ ई०) ११९४ ई० में चीन का सम्राट हुआ। १२०७ ई० में मि-ञग् प्रदेश को छोड़कर सारा भोट उसके अधिकार में चला गया। जिस समय चंगेज देश-विजय कर रहा था, उसी समय स-स्क्य-पंडित कुन्-द्गऽ-र्ग्यल्-म्छ़न् ने धर्म-विजय की ठानी, और उन्होंने १२२२ ई० में मंगोल देश में धर्म प्रचारक भेजे। १२३९ ई० में मंगोल सर्दार छि-ग्य-दो-ती ने मध्य भोट पर चढ़ाई की, और स-स्क्य मठ के पाँच सौ भिक्षुओं को मार डाला। र-स्ग्रेङ और र्ग्यल् खङ् के मठों को भी इसने जला डाला। १२४३ ई० में संघराज ने अपने दो भतीजों ऽफग्स्-प और फ्यग्-न को प्रचार के लिए मंगोलिया भेजा। १२४६ ई० में वह स्वयं चीन के मंगोल सम्राट् गोतन् से मिले, और दूसरे वर्ष सम्राट के गुरु बने। सम्राट ने १२४८ ई० में भोट देश के द्वुस् और ग्च़ङ्-प्रदेश अपने गुरु को प्रदान किए। भोट देश में धर्माचार्यों के शासन का सूत्रपात इसी समय से हुआ। धर्म प्रचार के काम में लगे रहते हुए, मंगोलिया के स्प्रुल्-स्दे स्थान में, १२५० ई० में, इनका देहांत हुआ। यह अच्छे पंडित और कवि थे। इनकी पुस्तक 'स-स्क्य-लेग्स्-ब्शद्' की नीति-शिक्षा-पूर्ण गाथाएँ अब भी भोट देश के पाठ्य-विषयों में हैं।

ऽफग्स्-प, संघराज (१२५१-८० ई०)—इनका जन्म १२३४ ई० में हुआ था। इनके मंगोलिया जाने की बात पहले ही कही जा चुकी है। चचा की मृत्यु के बाद यह संघराज बने। स-स्क्य विहार में तबसे अब तक यही प्रथा चली आती है, कि घर का एक व्यक्ति भिक्षु बन जाता है, और वही पीछे संघराज के पद पर बैठता है। चचा ने ऽफग्स्-प की शिक्षा का विशेष ध्यान रखा था। १२५१ ई० में ऽफग्स्-प भावी चीन-सम्राट्, राजकुमार कुब्ले-हान् के गुरु बने। १२६५ ई० तक वह चीन और मंगोलिया में ही रहे। १२६९ ई० में फिर मंगोलिया गए, और १२८० ई० में उनका देहांत हुआ।

स्कर्-म-बक्-सि-छो-ऽजिन् (१२०४-८३ ई०)—स-स्क्य के ऽफग्स्-प का यह समकालीन था। यद्यपि पांडित्य में स-स्क्यों की समानता नहीं कर सकता था, किन्तु यह अपने समय का अद्भुत चमत्कारी सिद्ध समझा जाता

था। चीन के मंगोल-सम्राट् मुन्-खे ने इसके सिद्धत्व की परीक्षा ली, और १२५६ ई० में उसने इसे अपना गुरु बनाया।

जिस समय स-स्क्य-प और द्कर्-ग्र्युद्-प संप्रदाय के प्रमुख इस प्रकार विद्या, सिद्ध-चर्या, और धर्म-प्रचार के जोश से अपने प्रभाव को बढ़ा रहे थे, उसी समय आचार्य शांतरक्षित का अनुयायी, भोट का सबसे पुराना धार्मिक संप्रदाय ञिङ्-म-प नीचे गिरता जा रहा था। इसने पुराने बोन्-धर्म की भूत-प्रेत-पूजा, जादू-मंतर को अपनाकर, उसमें और तरक्की की। इसके गुरु लोग मिथ्या विश्वास-पूर्ण नई-नई पुस्तकें बनाकर, उन्हें बुद्ध, पद्मसंभव या किसी और पुराने आचार्य के नाम से पत्थरों और जमीन से खोदकर निकाल रहे थे। गतेर-स्तोन ने १११८ ई० में और ञिङ्-म-धर्माचार्य स-द्वङ् ने १२५६ ई० में, ऐसे ही जाली ग्रंथों को खोद निकाला था।

स्कर्-म-बक्-सि के मरने (१२८२ ई०) पर, उसके योग्य शिष्यों में से न चुना जाकर, एक छोटा बालक रङ्-ऽब्युङ्-दों-र्जे (जन्म १२८४ ई०) उसका अवतार स्वीकार किया गया। इससे पूर्व यद्यपि एकाध ऐसे उदाहरण थे, किन्तु अब तो अवतारी लामाओं की बीमारी सी फैल गई। स्कर्-म की देखा-देखी पीछे ऽब्रि-गुङ्-प, ऽब्रु ग्-प आदि द्कर्-ग्र्युद्-प निकायों ने इस प्रथा को अपनाया। आगे चलकर ग़ेङ्-ख-प के अनुयायियों ने भी दलाई-लामा (र्ग्यल्-व-रिन्-पो-छे) और टशी-लामा (पण्-छेन्-रिन्-पो-छे) के चुनावों में ऐसा ही किया, और इस प्रकार आजकल छोटे-छोटे मठों से लेकर बड़ी-बड़ी जागीरवाली महंतशाहियों के लिए ऐसे हजारों अवतारी लामा तिब्बत में पाए जाते हैं। इस प्रथा के इतने अधिक प्रचार का कारण क्या है? गद्दीधर के बाल्यकाल में कुछ स्वार्थियों को मठ का सारा प्रबंध अपने हाथ में रखने का मौक़ा मिलता है; और अवतारी लामा के माँ-बाप और संबंधियों के लिए मठ एक घर की संपत्ति सी बन जाती है। लेकिन इस प्रथा के कारण उत्तराधिकार के लिए विद्या और गुण का महत्व जाता रहा, और अधिकांश नालायक लोग इन पदों पर आने लगे।

बारहवीं शताब्दी में चौरासी सिद्धों के बहुत से हिंदी दोहों और गीतों के भी भोट भाषा में अनुवाद हुए। इसी समय (शोङ्स्तोन्) दों-जे-र्ग्यल-म्छ़न् (मृत्यु ११७७ ई० ?) ने पंडित लक्ष्मीकर की सहायता से 'काव्यादर्श' (दंडी), 'नागानंद' (हर्षवर्द्धन), और 'बोधिसत्त्वादानकल्पलता' (क्षमेंद्र) ग्रंथों के भोट भाषा

में भाषांतर किए।

अब मठों के हाथ में शासन का अधिकार आने पर उन्होंने भी वही करना शुरू किया, जो शासकों में हुआ करता है। १२५२ ई० में स-स्क्य वालों ने भोट के तेरह प्रांतों पर अधिकार कर लिया। १२८५ ई० में ऽब्रि-गोङ् के अधिकारियों ने अपने विरोधी ब्य-युल् मठ को जला डाला। १२९० ई० में स-स्क्य वालों ने ऽब्रि-गोङ् को लूट लिया।

(बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुब् (१२९०-१३६४ ई०)— तेरहवीं सदी के अंत के साथ, भारत के बौद्ध केंद्रों से बौद्ध धर्म का अंत हो गया। अब भोट देश को सजीव बौद्ध भारत से विचारों के दाना-दाना का अवसर न रह गया। भोट में भी अब प्रभावशाली महंतशाहियों की प्रतिद्वंद्विता का समय आरंभ हुआ। अब तक जितने भी भारतीय ग्रंथ भोट भाषा में अनूदित हुए थे, उनको क्रम लगाकर इकट्ठा संग्रहीत करने का काम नहीं हुआ था, इसलिए सारी अनुवादित पुस्तकों का न किसी को पता था, और न वह एक जगह मिल सकती थीं। ऐसे समय (१२९० ई०) में (बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुब का जन्म हुआ। यह श-लु विहार में जाकर भिक्षु हुए। यह अपने ही समय के नहीं, बल्कि आज तक के, भोट देश के अद्वितीय विद्वान हुए। शुरू में स-स्क्य मठ में भी यह अध्यापन का काम करते रहे, जिससे इन्हें वहाँ के विशाल पुस्तकालय को देखने का अवसर मिला। यद्यपि इन्होंने 'कलाप-धातु-काय' (दुर्गसिंह), 'त्याद्यन्तप्रक्रिया' (हर्षकीर्ति) आदि कुछ थोड़े से ग्रन्थों के अनुवाद किए हैं, किन्तु इनका दूसरा काम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने अपने समय तक के सभी अनुवादित ग्रंथों को एकत्रित कर क्रमानुसार दो महान् संग्रहों में जमा किया, यही स्क-ऽग्युर् (कन्-जुर्) और स्तन्-ऽग्युर् (तन्-जुर्) हैं। इनमें स्क-ऽग्युर् में तो उन ग्रंथों को एकत्रित किया, जिन्हें बुद्ध-वचन कहा जाता है। 'स्क' शब्द का अर्थ भोट भाषा में 'वचन' होता है। 'स्तन्' का अर्थ है शास्त्र और 'ऽग्युर्' कहते हैं, अनुवाद को। स्तन्-ऽग्युर् में बुद्ध-वचन से भिन्न—आचार्यों के दर्शन, काव्य, वैद्यक, ज्योतिष, देवता-साधन, और स्क-ऽग्युर् तथा स्तन्-ऽग्युर् की टीकायें तथा कितने ही और ग्रंथों की टीकाएँ संग्रहीत हैं। इन्होंने इन संग्रहों को अपने ही तत्वावधान में और एक निश्चित क्रम से लिखवाकर अलग-अलग वेष्टनों में विभक्त किया। साथ ही ग्रंथों की सूची भी बनाई। यह मूल प्रति अब भी श-लु-विहार में (जो कि ग्याँची से दो दिन के रास्ते पर है) मौजूद हैं। बु-स्तोन्

ने स्वयं पचासों ग्रंथ लिखे, जिनमें एक में भारत और भोट देश में बौद्ध धर्म के इतिहास (१३२२ ई० में लिखित) का महत्वपूर्ण वर्णन है। १३६४ ई० में श-लु-विहार में इस महान विद्वान् के देहांत के साथ भोट देश के धार्मिक इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण खंड की समाप्ति होती है।

स्-सक्य-युग के अंत में (यर्-लुङ्) ग्रग्स्-प-ग्र्यल्-म्छन्, चंद्रगोमी के 'लोकानंद' नाटक और कालिदास के 'मेघदूत' तथा कुछ और ग्रंथों के अनुवादक ब्यङ्-छुप्-चे-मो (१३०३ ई०) जैसे कुछ और विद्वान् अनुवादक हुए।

चोङ्-ख-प-युग (१३७६-१६६४)

चोङ्-ख-प—बु-स्तोन् के देहांत के सात वर्ष पूर्व (१३५७ ई० में) अम्—दो प्रांत के चोङ्-ख ग्राम में एक मेधावी बालक उत्पन्न हुआ जिसका भिक्षु नाम यद्यपि ब्लो-ब्सङ्-प (सुमतिकीर्ति) है, तो भी वह अधिकतर अपने जन्म-ग्राम के नाम से चोङ्-ख-प (चोङ्-ख-वाला) ही करके प्रसिद्ध है। अम्-दो ल्हासा से महीनों के रास्ते पर मंगोलिया की सीमा के पास एक छोटा सा प्रदेश है। चोङ्-ख-प के पूर्व यह प्रदेश अशिक्षित लोगों का ही निवास-स्थान समझा जाता था। सात वर्ष की अवस्था (१३६३ ई०) में यह दोन्-रिन्-प का श्रामणेर बना। तब से पंद्रह वर्ष की अवस्था तक वहीं अध्ययन करता रहा। तब उसे विशेष अध्ययन के लिए अच्छे अध्यापकों की आवश्यकता हुई और १३७२ ई० में मध्य-भोट में चला आया। उन्नीस वर्ष की छोटी अवस्था (१३७६ ई०) में उसने अपना प्रथम ग्रंथ लिखा। (रे-म्दऽ-प) ग्शोन्-ब्लोनु-ग्रोस् से इसने दर्शन-शास्त्र पढ़ा। 'विनय' में इसका गुरु बु-स्तोन् का शिष्य (द्मर्-स्तोन्) ग्र्य-म्छो-रिन्-छेन् था। चोङ्-ख-प बु-स्तोन् के ग्रंथों से बहुत प्रभावित हुआ, और वस्तुतः उसके इतने महान् कार्य को संपन्न करने में बु-स्तोन् के कार्य ने बहुत उत्साह प्रदान किया। उसको अफसोस था, कि क्यों न मुझे बु-स्तोन् के चरणों में बैठकर अध्ययन करने का सौभाग्य मिला। इसने स-स्क्य-प, द्कर्-ग्र्युद्-प और (दीपंकर के अनुयायी) ब्कऽ-दम्-प तीनों ही संप्रदायों से बहुत सी बातें सीखीं। इसके अनुयायी अपने को ब्कऽ-दम् प के अंतर्गत मानकर अपने को नवीन ब्कऽ-दम्-प कहते हैं। वस्तुतः जिस प्रकार ब्कऽ-दम्-प मठ स्वेच्छा से द्गे-लुग्स्-प (चोङ्-ख-प के संप्रदाय) में परिणत हो गए, उससे उनका यह कहना अयुक्त भी नहीं है।

चोङ्-ख-प के जन्म से दो वर्ष पूर्व (१३५४ ई० में) फग्-ग्रुब् के (सि-तु) ब्यङ्-छुप्-ग्र्यन् (जन्म १३०३ ई०) ने सारे ग्चङ् प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। १३४९ ई० में उसने द्वुस् प्रदेश को भी अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार चोङ्-ख-प के कार्य क्षेत्र में पदार्पण करने के समय मध्य-भोट में एक सुदृढ़ शासन स्थापित हो चुका था। किन्तु धार्मिक स्थिति बहुत बुरी थी। बड़े-बड़े विद्वान् एक-एक करके चल बसे थे। पुराने विद्या-केंद्र अपना वैभव खो चुके थे। म्छ़न्-ञिद्-प (दर्शनवादी) और ब्कऽ-दम्-प यद्यपि अब भी ज्ञान और वैराग्य की ज्योति जलाए हुए थे, किंतु वह ज्योति पहाड़ों की गुफाओं और देश के गुमनाम कोनों में छिपी हुई थी। चोङ्-ख-प में ज्ञान और वैराग्य, अथवा प्रज्ञा और समाधि दोनों उचित मात्रा में मौजूद थीं और उससे भी अधिक उसमें धर्म की बिगड़ी अवस्था के सुधारने की लगन थी। वह विद्वान, सुवक्ता और सुलेखक था, और अपनी ओर योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने की शक्ति रखता था। इतने अधिक योग्य और कार्य-कुशल शिष्य किसी भी भोट-देशीय आचार्य को न मिले। बु-स्तोन् का सारा काम एक अकेले व्यक्ति का था। १३९५ ई० तक चोङ्-ख-प का विद्यार्थी जीवन रहा। १३९६ ई० में अब वह अपने जीवनोद्देश्य—बौद्ध धर्म में आई बुराइयों को दूर करने का विद्या-प्रचार—में लग गया। वह समझता था, कि लोगों का मिथ्या-विश्वास हटाया नहीं जा सकता, जब तक कि उनमें दर्शन-शास्त्र तथा विद्या का प्रचार न किया जाय। उसके इस काम ने म्छ़न्-ञिद्-प के काम को ले लिया, और इस प्रकार कुछ ही समय में म्छ़न्-ञिद्-प के सारे मठ द्गे-लुग्स संप्रदाय में शामिल हो गए। १३९६ ई० में इसने ग्ङल् का महाविद्यालय स्थापित किया। १४०५ ई० में ल्हासा में संघ-सम्मेलन के लिए एक विशाल भवन (स्मोन्-लम्-छेन्-पो) बनवाया, और उसी वर्ष ल्हासा से दो दिन के रास्ते पर द्गेऽ-ल्दन् (गम्दन्) का महाविहार स्थापित किया। उसके शिष्यों में जम्-द्ब्यङ्स् (१३७८-१४४९ ई०) ने १४१६ ई० में ऽब्रस्-स्पुङ् (डेपुङ्=धान्यकटक) के महाविहार की स्थापना की। शाक्य-ये-शेस् (जन्म १३८३ ई०) ने १४१९ ई० में से-र महाविहार की स्थापना की। इसी वर्ष चोङ्-ख-प की लन्दन में मृत्यु हुई। पीछे उसके शिष्य (प्रथम दलाई लामा) द्गे-ऽदुन्-ग्रुब (१३९१-१४७४ ई०) ने १४४७ ई० में ब्क्र-शिस-ल्हुन-पो (टशील्हुन्पो) महाविहार स्थापित किया, और (स्मद्) शेस-रब्-द्सङ् (१३९५-१४५७ ई०) ने खम्स् प्रदेश में छप्-म्दो (१४३७) के

महाविहार की स्थापना की।

चोङ्-ख-प ने जहाँ शास्त्रों के अध्ययन के लिए इतना किया, वहाँ उसने भिक्षु-नियमों के प्रचार के लिए कम काम नहीं किया। इसी काम के लिए तो इसके अनुयायी द्गे-लुग्स्-प (भिक्षु-नियमानुयायी) कहलाए। इसने भिक्षुओं के प्रधान वस्त्रों के लिए पीला रंग पसंद किया, और विशेष अवसरों पर पहनी जाने वाली टोपियों का रंग भी पीला रखा, जिससे इसके अनुयायी पीली-टोपीवाले लामा कहे जाते हैं। अवतारों की महामारी से ग्रस्त भोट देश में उत्तराधिकारी चुनने में उसने योग्य शिष्य का नियम बनाया और आज तक चोङ्-ख-प की गद्दी पर उसका अवतार नहीं, उसकी परंपरा का योग्य पुरुष बैठता है, जिसे कि द्गऽ-ल्दन्-ख्रि-प (गन्दन का गद्दीनशीन) कहते हैं। तो भी उसके अनुयायियों ने उसके अन्य मुख्य शिष्यों के उत्तराधिकार के लिए फिर अवतार का खयाल रखना शुरू किया, और आज द्गे-लुग्स्-संप्रदाय में अवतारी लामाओं की संख्या सबसे अधिक है।

चोङ्-ख-प का शिष्य म्खस् ग्रुप् (१३८५-१४३८ ई०)—जो पीछे द्गऽल्द्न् तीसरा संघराज हुआ—उसके सभी शिष्यों में महाविद्वान् था। इसने अनेक ग्रंथ लिखे, और अपने गुरु के काम को आगे बढ़ाया।

पंडित वनरत्न (१३८४-१४६८ ई०)—पंडित वनरत्न अंतिम भारतीय बौद्ध भिक्षु थे, जिन्होंने भोट में जाकर अनुवाद और धर्म-प्रचार का काम किया। इनका जन्म पूर्वदेश (बंगाल?) के एक राजवंश में हुआ था। इनके गुरु का नाम बुद्ध घोष था। बीस वर्ष की अवस्था में यह सिंहल चले गए, और वहाँ आचार्य धर्म कीर्ति[१] की शिष्यता में भिक्षु हुए। छः वर्षों तक वहीं अध्ययन करते रहे। फिर श्रीधान्यकटक होते हुए मगध देश में आए। वहाँ हरिहर पंडित के पास 'कलाप' व्याकरण पढ़ा। फिर कई जगह विचरते हुए नेपाल पहुँचे। वहाँ पंडित शीलसागर[२] के पास कुछ अध्ययन कर १४५३ ई० में भोट देश आए। ल्हासा और यर्-लुङ्स् में कितने ही समय तक रहकर इन्होंने कुछ तांत्रिक ग्रंथों के अनुवाद में सहायता की। फिर नेपाल लौटकर शांतिपुरी विहार में ठहरे। दूसरी बार राजा (सि-तु) रब्-वर्त्तन के निमंत्रण पर फिर भोट देश

१. शायद 'निकाय संग्रह' के कर्ता प्रसिद्ध राजगुरु धर्मकीर्ति

२. ऽब्रुग्-प-पद्म-द्कर-पी (जन्म १५२७ ई०)—'छोस्-ऽब्युङ्' पृष्ठ १५५ क।

आए। भोटराज ग्रग्स्-प-ऽब्युङ्-ग्नस् के समय में राजधानी चेंर्स-थङ् में पहुँचे। कितने ही समय रहकर फिर नेपाल लौट गए, और वहीं १४६८ ई० में इनका देहांत हुआ। इनके द्वारा अनुवादित ग्रंथों में सिद्धों के कुछ दोहे और गीत भी हैं। (ऽगोस्-यिद्-ब्स-ङ्-च) गशोन्-नुद्-पल् (जन्म १३९२ ई०), (स्तग्) शेस्-रब्-रिन्-छेन् (जन्म १४०५ ई०) और शेस्-रब्-ग्र्यल् (१४२३ ई०) इनके सहायक लो-च़-व थे।

(श-लु) धर्मपालभद्र (जन्म १५२७ ई०)—यही अंतिम विद्वान् लो-च़-व थे। यह बु-स्-तोन् के प्रसिद्ध श-लु-विहार के भिक्षु थे। इन्होंने 'अभिधर्मकोश-टीका' (स्थिरमति), 'ईश्वरकर्तृत्वनिराकृति' (नागार्जुन), 'मंजुश्रीशब्द-लक्षण' (भव्यकीर्ति) आदि ग्रंथों के अनुवाद किए। इनसे पूर्व इसी श-लु-विहार के दूसरे विद्वान् लो-च़-व रिन्-छेन्-व्सङ् (१४८९-१५६३ ई०) ने भी कुछ ग्रंथों के अनुवाद किए थे।

लामा तारानाथ (जन्म १३७५ ई०)—असली नाम ग्र्यल्-खङ्-प कुन्-द्गऽ-स्ञिङ्-पो था। यद्यपि इनका अध्ययन बु-स्तोन् या चोङ्-ख-प की भाँति गंभीर न था, तो भी यह बहुश्रुत थे। इन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं, जिनमें भारत में बौद्ध धर्म के इतिहास विषय की भी एक है। सर्वप्रथम इसी इतिहास का एक यूरोपीय भाषा में अनुवाद होने से तारानाथ का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इनके अनुवादित ग्रंथों में अनुभूतिस्वरूपाचार्य का 'सारस्वत' भी है, जिसका इन्होंने कुरुक्षेत्र के पंडित कृष्णभद्र की सहायता से अनुवाद किया था।

पंद्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दी भोटदेश में भिन्न-भिन्न मठों की प्रतिद्वंद्विता का समय था। यह प्रतिद्वंद्विता सशस्त्रप्रतिद्वंद्विता थी। १४३५ ई० में फग्-ग्रु ब् मठवालों ने ग्चङ् प्रदेश को, रिन्-स्पुङ्वालों के हाथ से छीन लिया। १४८० ई० में श्व-द्मर् लामा (छोस्-ग्रग्स्-ये-शेस्—मृत्यु १५३४ ई० ?) ने ग्च़ङ् की सेना लेकर द्बुस-प्रदेश पर चढ़ाई की। १४९८ ई० में रिन्-छेन्-स्पुङ्-पो ने ग्च़ङ् की सेना लेकर स्नेऽु-ज़ोंङ् और स्प्यिद-शङ् पर अधिकार कर लिया। इसी वर्ष ग्सङ्-फु और स्कर्-म लामों ने वार्षिक धर्म-सम्मेलन के समय स-स्क्य-प और ऽब्रस-स्पुङ् के भिक्षुओं को अपमानित किया। १५१८ ई० तक—जब तक कि ग्चङ् की शक्ति क्षीण न हो गई—ऽब्रस्-सपुङ् और से-रके भिक्षु वार्षिक पूजा (स्मोन्-लम् छेन्-पो) में अपना स्थान प्राप्त न कर सके। १५७५ ई० में रिन्-स्पुङ् (ग्चङ्) ने फिर द्वुस् में

आकर लूटमार की। १६०४ ई० में स्कर्-म सेना ने स्क्य-शोद् दुर्ग नष्ट कर दिया। १६१० ई० में फिर गचङ्-सेना ने द्वुस् पर चढ़ाई की। १६१२ ई० में स्कर्-म महंतराज सारे ग्चङ् का शासक बन बैठा। १६१८ ई० में ग्चङ् -सेना ने द्वुस् पर चढ़ाई कर ऽब्रस्-स्पुङ् विश्वविद्यालय के हज़ारों भिक्षुओं को मार डाला।

ऊपर के वर्णन से मालूम होगा, कि उस समय भोट देश के मठ, विद्वानों और विरागियों के एकांत-चिन्तन के स्थान न होकर सैनिक अखाड़े बन गए थे। वस्तुतः सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों में यह बात भारत और यूरोप पर भी ऐसे ही घटती है। भारत में भी इस समय संन्यासियों और वैरागियों के अखाड़े और उनके नागे सैनिक ढंग पर संगठित ही न थे, बल्कि कुंभ और मेलों पर इनकी आपस में खूब मारकाट होती थी। यूरोप में पोप के भिक्षुओं की भी उस समय यही दशा थी। चोङ्-ख-प के अनुयायियों की प्रशंसा में यह बात जरूर कहनी पड़ेगी, कि १६४२ ई० तक—जबकि भोट का राज्य उन्हें मंगोल शिष्यों द्वारा अर्पित किया गया—उन्होंने शासन और राज्य में दखल करने का प्रयत्न नहीं किया। वह बराबर धर्म-प्रचार और विद्या-प्रचार में लगे रहे। उनके ऽब्रस्-स्पुङ्, से-र, द्गऽ-ल्दन्, ब्क्र-शिस्-ल्हुन्-पो, विहारों ने विश्वविद्यालयों का रूप धारण कर लिया था, जिनमें कि भोट देश के कोने-कोने के ही नहीं, बल्कि सुदूर मंगोलिया और साइबेरिया तक के भिक्षु अध्ययनार्थ आने लगे थे। इन विश्वविद्यालयों के काम को देखकर धनी, गरीब सभी जनता दिल खोलकर उनकी सहायता कर रही थी। इनके छात्रावास प्रदेश-प्रदेश के लिए नियत थे, जिनमें कुछ वृत्तियाँ भी नियत हो गई थीं। अर्थ-हीन विद्यार्थी भी इन छात्रावासों में रहकर अच्छी तरह विद्याध्ययन कर सकते थे, और विद्या-समाप्ति पर अपने देश में जाकर अपनी मातृ-संस्था और द्गे-लुग्स्-प-संप्रदाय के प्रति प्रेम और आदर का प्रसार करते थे। इतना ही नहीं, द्गे-लुग्स्-संप्रदाय के नेताओं ने मंगोलिया में स-स्क्य संघराज के धर्म-प्रचार के कार्य को जारी रखा। १५७७ ई० में तीसरे दलाई लामा ब्सोद्-र्नम्स् ग्र्य-म्छो धर्म प्रचारार्थ स्वयं मंगोलिया गए। और मंगोल-सर्दार अल्-तन्-हान ने (१५७८ ई० में) उनका स्वागत किया। इस समय तक द्गे-लुग्स्-प विश्वविद्यालयों के कितने ही मंगोल स्नातक अपने देश में फैल चुके थे। दूसरे वर्ष दलाई लामा ने वहाँ थेग्-छेन्-छोस्-ऽखोर्-ग्लिङ् की स्थापना की। इस यात्रा में उन्होंने अम्-दो

खम्स आदि के महाविहारों का निरीक्षण किया और कुछ नए विहार स्थापित किए। १५८८ ई० में तृतीय दलाई लामा का देहांत हो गया।

चतुर्थ दलाई लामा योन्-तन्-ग्यं-म्छो, १५८९ ई० में, मंगोलवंश में ही पैदा हुआ। इन बातों ने मंगोल-जाति का द्गे-लुग्स्-प संप्रदाय से घनिष्ठ संबंध स्थापित कर दिया। यही वजह हुई कि जब भोट के राज्यलोलुप मठों ने द्गे-लुग्स्-प के प्रभाव को बढ़ते देख उनसे भी छेड़खानी शुरू की, तो मंगोल वीरों ने, उनकी रक्षा के लिए अपना रक्त देना निश्चय कर लिया। १६१८ ई० में ग्चड् सेना का ऽब्रस्-स्पुङ् के हजारों भिक्षुओं को जान से मारना मंगोलों के लिए असह्य हो गया। इस खबर के पाते ही सारे मंगोलिया में ग्चङ् के मठाधारियों के खिलाफ क्रोध का समुद्र उमड़ पड़ा। उस समय तक मंगोल-वीर गु-श्री-खान् (१५८२-१६५४ ई०) की कीर्ति सारे मंगोलिया में फैल चुकी थी। उसने मंगोल योद्धाओं की एक बड़ी सेना तैयार कर मध्य-तिब्बत की ओर कूच कर दिया। ग्चङ् वालों को मालूम होने पर, वह भी उनसे लड़ने के लिए आगे बढ़े। १६२० ई० में ग्यंङ्-थङ्-गङ् में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। बहुत-से भोटिया सैनिक मारे गए, किन्तु उस वर्ष कोई आखिरी फैसला नहीं हुआ। दूसरे वर्ष (१६२९ ई० में) फिर वहीं युद्ध हुआ, और ग्चङ् सेना बुरी तरह से पराजित हुई। तो भी कुछ शर्तों के साथ फिर राज्य द्गे-ग्रग्स्-प के हाथ में ही रहने दिया गया। लेकिन द्गे-लुग्स्-प को दबाने की नीति न बदली। बल्कि द्गे-लुग्स्-प के इतने प्रबल पक्षपातियों को देखकर विरोधी और भी तेज हो उठे। १६३७ ई० में इसके लिए द्गे-लुग्स्-विरोधिनी खल्-ख (मंगोल) जाति को गु-श्री-खान् ने को-को-नोर् झील के पास युद्ध करके परास्त किया, और वहाँ से द्वुस् प्रदेश (ल्हासा वाले प्रांत) में आकर, फिर को-को-नोर् लौट गया। १६३९ ई० में बौद्ध विरोधी बोन्-धर्मानुयायी खम्स् के शासक वे-रि से युद्ध हुआ। वह राज्य से वंचित कर कैद कर लिया गया, और दूसरे वर्ष उसके अत्याचारों के लिए उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया। ग्चङ्वालों की शरारत अभी कम न हुई थी, इसलिए १६४२ ई० में गु-श्री ने ग्चङ् पर चढ़ाई करके राजा को पकड़कर, गच्चङ् और कोङ्-पो प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया। गु-श्री-खान् ने सारे विजित राज्य को पंचम दलाई लामा ब्लो-ब्सङ्-ग्यं-म्छो के चरणों में अर्पण किया, और उनकी तरफ से प्रबंध के लिए वह भोट का राजा उद्घोषित हुआ। इस प्रकार भोट में धर्माचार्यों का दृढ़ शासन स्थापित

होकर अब तक चला जा रहा है।

(ग्यल्-व) ब्लो-ब्सङ्-ग्य-म्छो (१६१७-८२ ई०)—चौथा दलाई लामा मंगोल जाति का था, यह पहले कह आए हैं। १६१६ ई० में उसकी मृत्यु के बाद, उसका अवतार समझा जाने वाला पाँचवाँ दलाई लामा पैदा हुआ। यह अभी दो वर्ष का ही था, तभी ग्चङ् सेना ने डे-पुङ् के हजारों भिक्षुओं को मारा था। छः वर्ष की अवस्था (१६२२ ई०) में यह ऽब्रस्-स्पुङ् (डे-पुङ्) का नायक उद्घोषित हुआ। जब अवतार से सब काम होने वाला है, तब योग्यता और आयु का विचार करने की क्या आवश्यकता? १६३८ ई० में ब्क्र-शिस्-ल्हुन्-पो विहार के नायक पण्-छेन् (महा पंडित) छोस्-क्यि-ग्यल्-म्छन् (१५७०-१६६२ ई०) से इसने भिक्षु-दीक्षा ग्रहण की।

मंगोल-सर्दार ने चोङ्-ख-प से गद्दीधर गन्दन-ठी-पा को राज्य न प्रदान कर, क्यों दलाई लामा को दिया, इसका कारण स्पष्ट है मंगोलिया में धर्म-प्रचार के लिए तीसरा दलाई लामा गया था, और चौथा दलाई लामा स्वयं मंगोल था, इस प्रकार वह दलाई लामा से ही अधिक परिचित था। भोटिया लोग दलाई लामा की जगह पर ग्यल्-व-रिन्-पो-छे (जिन-रत्न) शब्द का प्रयोग करते हैं। दलाई लामा यह मंगोल लोगों का दिया नाम है। मंगोल भाषा में त-ले सागर को कहते हैं। पहिले को छोड़ कर बाकी सभी दलाई लामों के अंत में ग्य-म्छो (सागर) शब्द का प्रयोग होता है। इसीलिए मंगोल लोगों ने त-ले-लामा कहना शुरू किया, जिसका ही बिगड़ा रूप दलाई लामा है। टशी (ब्क्र-शिस्) लामा को भोट भाषा में पण्-छेन्-रिन्-पो-छे (महापंडित-रत्न) कहते हैं। पंचम दलाई लामा सुमितसागर के गुरु पण-छेन्-छोस्-क्यि-ग्यल्-म्छन् से पूर्व वहाँ अवतार की प्रथा न थी। किंतु पंचम दलाई के गुरु होने से उनका सम्मान बहुत बढ़ गया, और मृत्यु के बाद उनके लिए भी लोगों ने अवतार की प्रथा खड़ी कर ली। वर्तमान टशी-लामा (पण्-छेन्)-छोस्-क्यि-ञि-म (धर्मसूर्य) उनके पाँचवें अवतार हैं। पंचम दलाई लामा सुमतिसागर यद्यपि अवतार समझे जाने के कारण उस पद पर पहुँचे थे, तो भी वह बड़े कार्यपटु शासक थे। इनके शासन के समय में ही १६४४ ई० में मिङ्-वंश को हटाकर मंचू-सर्दार सुन्-ति-छि-थे-चुङ् चीन का सम्राट् बना। दूसरे साल १६४५ ई० में दलाई लामा ने पोतला का महाप्रासाद बनवाया। १६५२ ई० में चीन सम्राट् के निमंत्रण पर वह चीन गए, और सम्राट् ने उन्हें ता-इ-श्री की पद्वी से विभूषित किया। यह सारी अभ्यर्थना

चीन-सम्राट् ने शक्तिशाली मंगोल जाति को अपने पक्ष में करने के लिए की थी, जिन पर दलाई लामा का बहुत अधिक प्रभाव था। १६५४ ई० में गु-श्री-खान् के मरने पर, उसका पुत्र त-यन् खान् (१६६० ई०) भोट का राजा बनाया गया। उसके भी मरने पर त-ले-खान्-रत्न भोट का राजा बना।

पंचम दलाई लामा को भी धर्म-प्रचार की लगन थी। वह चीन से लौटते हुए स्वयं इसके लिए बहुत से प्रदेशों में गए। उन्होंने एक होनहार भिक्षु फुन्-छोग्स्-ल्हुन-ग्रुब् को संस्कृत पढ़ने के लिए भारत भेजा। इसने कुरुक्षेत्र के पंडित गोकुलनाथ मिश्र और पंडित बलभद्र की सहायता से रामचंद्र की पाणिनि-व्याकरण की 'प्रक्रिया-कौमुदी' (१६५८ ई०) और 'सारस्वत' का (१६६५ ई०) भोट भाषा में अनुवाद किया। गौतम भारती, ओंकार भारती और उत्तमगिरि नामक रमते साधुओं की सहायता से (१६६४ ई० में) इसने एक वैद्यकग्रंथ का भी अनुवाद किया। यही भोट का अंतिम अनुवादक था। १६८२ ई० में पाँचवें त-ले-लामा की मृत्यु हुई।

अंतिमयुग (१६६४– १९१२)

छङ्-स्-द्ब्यङ्-स्-ग्र्य-म्छो (१६८३-१७०५ ई०)—पंचम दलाई की मृत्यु के बाद ब्रह्मघोष-सागर उसका अवतार समझा गया। यह बड़ी ही रंगीली तबीयत का आदमी था। वस्तुत: यह भिक्षु बनने के लिए नहीं पैदा हुआ था। लेकिन क्या करे? १७०२ ई० में इसने भिक्षु व्रत तोड़ दिया। लोगों में तहलका मच गया। और इसके फलस्वरूप ल्ह-ब्सङ् ने सरकारी सेना को परास्त कर १७०५ ई० में अपने को भोट का राजा उद्घोषित किया। हालत और भी खराब हुई होती, किंतु जिस वक्त, छठाँ दलाई ब्रह्मघोष-सागर चीन जा रहा था, रास्ते में को-को-नोर् झील के पास उसकी मृत्यु हो गई। इधर एक दूसरे ही व्यक्ति पद्-द्कर्-ऽ जिन्-ये-शेस्-ग्र्य-म्छो (पुंडरीकधर ज्ञानसागर) को पाँचवें दलाई लामा का असली अवतार बनाने का उपक्रम हो चुका था, किंतु ब्रह्मघोष के मर जाने से इसकी जरूरत न रही। १७०८ ई० में स्कल्-ब्सङ् -ग्र्य-म्छो पैदा हुए, जो छटे दलाई के अवतार माने गए।

ल्ह-ब्सङ् के स्वतंत्र राजा बन जाने की सूचना, जब मंगोलिया में पहुँची तो वहाँ फिर तैयारी होने लगी, और १७१७ ई० में छुङ्गर् (मंगोलों की बाईं शाखा की) सेना भोट की तरफ रवाना हुई। एक प्रचंड तूफ़ान की भाँति, इसके

रास्ते में जो कोई विरोधी आया, उसका इसने सत्यानाश किया। ल्हासा के उत्तर तरफ से मैदान में ल्ह-ब्सङ् ने इसका सामना किया, और लड़ाई में काम आया। ञिङ्-म-लामों ने ल्ह-ब्सङ् का पक्ष लिया था, इसलिए छुङ्-गर् सेना ने उनके मठों को ढूँढ-ढूँढकर जलाया, और नष्ट किया। उनके र्शम्-ग्यल्-ग्लिङ्, र्दो-र्जे-ब्रग् और स्मिन्-ग्रोल-ग्लिङ् मठ लूट लिए गए। छुङ्गर् के प्रलयंकारी कृत्य के चिन्ह स्वरूप, आज भी भोट देश में सैकड़ों खंडहर जगह-जगह खड़े दिखाई देते हैं। इस प्रकार मंगोलों की सहायता से फिर दलाई लामा को राज्य-शक्ति प्राप्त हुई। सातवें दलाई लामा स्कल्-ब्सङ्-ग्र्य-म्छो (भद्रसागर) बड़े ही विरागी पुरुष थे। ये राज्य-कार्य की अपेक्षा ज्ञान-ध्यान में अपना सारा समय लगाते थे। इनके काल में १७२७ ई० में एक बार फिर कुछ मंत्रियों ने बग़ावत की। उस समय (फो-ल-थे-जे) ब्सोद्-नम्स्-स्तोब्-ग्र्यस्—जिसे राजा मि-द्वङ् भी कहते हैं—ने म्ङऽ-रिस् और ग्च़ङ् की सेनाओं की सहायता से उन्हें परास्त कर दिया। इस सेवा के लिए मि-द्वङ् १७२८ ई० में भोट का उपराज बनाया गया। इसी मि-द्वङ् ने सर्वप्रथम सक्-ऽग्युर और स्तन्-ऽग्युर दोनों महान् ग्रंथ-संग्रहों को लकड़ी पर खुदवाकर छापा बनवाया, और उसे स्नर-थङ् विहार में रखा। इस मशहूर छापे के छपे कितने ही कन्-जुर्, तन्-जुर् आज दुनिया के पुस्तकालयों में पाए जाते हैं।

सातवें दलाई के समय में रोमन-कैथोलिक साधु कैपुचिन फ़ादर्स[१] ल्हासा में गए, और १७०८ ई० तक ईसाई धर्म का प्रचार करते रहे। इनसे पहले १६२६ ई० में पोर्तगीज़ जेसुइट् पाद्री अंद्रेदा ने तिब्बत में प्रवेश किया था, किंतु वह ल्हासा या ब्क्र शिस्-ल्हुन्-पो तक नहीं पहुँच सका था।

आठवें दलाई लामा के समय में कोई प्रसिद्ध घटना नहीं हुई। नवें (११ वर्ष), दसवें (१३ वर्ष), ग्यारहवें (१७ वर्ष), और बारहवें (२० वर्ष) दलाई लामा बहुत थोड़ी ही थोड़ी उम्र में मर गए। लोगों का कहना है, कि प्रबंधकों ने अधिकार हाथ से न जाने देने के लिए, उन्हें ख़तम कर दिया। इसके बाद वर्तमान तेरहवें दलाई लामा थुब्-स्तन्-ग्र्य-म्छो (मुनिशासनसागर जन्म १८७६ ई०) ही दीर्घजीवी हुए। अभी पिछले महीने में ही इनकी मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ है।

---

१. Capuchin Fathers

१७७९ ई० में तीसरे टशी लामा द्पल्-लद्न्-ये-शेस् (ज-१७४० ई०) चीन-सम्राट के निमंत्रण पर पेकिन् गए थे, वहाँ इनका बड़ा स्वागत हुआ था, किन्तु वहीं चेचक से इनका देहांत हो गया।

१८४० ई० में कुछ रोमन कैथोलिक पादरी ल्हासा में दो-ढाई मास रहे थे।

१९०४ ई० में लार्ड कर्जन ने कुछ व्यापारिक शर्तों को मनवाने तथा रूस के प्रभाव को भोट में न बढ़ने देने के लिए सशस्त्र मुहिम भेजी। ल्हासा अंग्रेजों के हाथ में आ गया, किंतु पीछे रूसी और अंग्रेजी सरकारों में समझौता हो गया, जिससे तिब्बत फिर पूर्ववत् रहने दिया गया। बीच में चीन और तिब्बत में मतभेद हो जाने से दलाई लामा को भारत चला आना पड़ा था, किन्तु १९१२ ई० में चीन की राज्य-क्रांति के समय मौका मिल गया, और भोट सैनिकों ने चीनी अधिकारियों को भोट से निकाल बाहर किया। दलाई लामा फिर तिब्बत लौट गए थे।

पाँचवें दलाई लामा के बाद धार्मिक क्षेत्र में भोट ने कोई विशेष कार्य न किया। डे-पुङ्, से-र आदि बड़े-बड़े द्गे-लुग्स्-प विहार अब भी बड़ी-बड़ी शिक्षण संस्थायें हैं, और कितने ही काम पूर्ववत् चले आते हैं, तो भी धार्मिक क्षेत्र में नवजीवन की बहुत कमी है।

परिशिष्ट

१—भोटदेशीय संवत्सर चक्र का आरम्भ

२—भोटदेशीय संवत्सर चक्र

३—भोटदेशीय मासों के नाम

४—भोटदेशीय अधि-मास वाले वर्ष और मास

५—स-स्क्य मठ के संघराज

६—कर्-म के संघराज

७—चोङ्-ख-प की गद्दी के मालिक संघराज

८—बौद्ध विद्वान् और उनके आश्रयदाता आदि

९—भारतीय ग्रन्थों के कतिपय तिब्बती-अनुवादक, उनके सहायक, आदि

१०—तिब्बती सम्राटों का समय

११—तिब्बती राजवंश

१२—ञिङ्-म सम्प्रदाय की परम्परा

१३—तिब्बत में भारतीय शास्त्र की परम्परा

१४—तिब्बत में चौरासी सिद्धों की परम्परा

१५—द्कऽ-ग्र्यद्-प सम्प्रदाय की परम्परा और शाखाएँ

१६—स-स्क्य वंशवृक्ष

१७—द्गेलुग्-स् सम्प्रदाय की परम्परा

१८—तिब्बत में बौद्ध धर्म से सम्बद्ध कुछ खास नाम और तिथियाँ

१—भोटदेशीय संवत्सर-चक्र (रब्-ऽब्युङ्)[१] का आरम्भ

रब्-ऽब्युङ्	ईस्वी सन्
१	१०२७
२	१०८७
३	११४७
४	१२०७
५	१२६७
६	१३२७
७	१३८७
८	१४४७
९	१५०७
१०	१५६७
११	१६२७
१२	१६८७
१३	१७४७
१४	१८०७
१५	१८६७
१६	१९२७

१. आजकल (संवत् १९९०) में सोलहवें रब्-ऽब्युङ् का—जो कि माघ संवत् १९८३ में आरम्भ हुआ था—सातवाँ जल-(स्त्री) पक्षी वर्ष चल रहा है।

२—[1]भोटदेशीय संवत्सर-चक्र (रब्-ऽब्युङ्)[2]

(स्त्री) शश	(पुरुष) नाग	(स्त्री) सर्प	(पुरुष) अश्व	(स्त्री) मेष	(पुरुष) वानर
अग्नि (प्रभव) १	भूमि, भू विभव २	भूमि (शुक्ल) °मूष ३	लोह (प्रमोद) ४	लोह (प्रजापति) ५	जल (अंगिरा) °अश्व ६
भूमि (प्रमाथी) १३	लोह विक्रम °वानर १४	लोह (वृष) १५	जल (चित्रभानु) १६	जल (सुभानु) °नाग १७	द्रुम (तारण) १८
लोह (खर) °अश्व २५	जल (नन्दन) २६	जल (विजय) °नाग २७	द्रुम (जय) २८	द्रुम (मन्मथ) २९	अग्नि (दुर्मुख) °शूकर ३०
जल (शोभन) ३७	द्रुम (क्रोधी) °मूष ३८	द्रुम (विश्वावसु) ३९	अग्नि (पराभव) ४०	अग्नि (प्लवंग) °पक्षी ४१	भूमि (कीलक) ४२
द्रुम (राक्षस) °श्व ४९	अग्नि (नल) ५०	अग्नि (पिंगल) ५१	भूमि (कालमुक्त) °मेष ५२	भूमि (सिद्धार्थ) ५३	लोह (रौद्र) ५४

१. संवत्सर का नाम बनाने में (स्त्री) शश, (पुरुष) नाग आदि बारहों नामों को उसके नीचे के कोष्ठकों के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे—अग्नि (स्त्री) शश, भूमि (पुरुष) नाग। (स्त्री)-(पुरुष) को कभी छोड़ भी दिया जाता है, और कभी-कभी भूमि आदि पाँचों नाम भी छोड़ दिए जाते हैं।

२. क्लोङ्-र्दल्-(जन्म १७१९ ई०) गसुं-बुं-म पृष्ठ १६ ख। °अधिक मास वाले वर्ष और मास, स-स्क्य-ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन्, - (११४६-१२१६ ई०) ब्कं-बुं, त, पृष्ठ २०३ ख।

(स्त्री) पक्षी	(पुरुष) श्वा	(स्त्री) शूकर	(पुरुष) मूषक	(स्त्री) वृष	(पुरुष) व्याघ्र
जल (श्रीमुख) ७	द्रुम (भाव) ८	द्रुम (युवा) °शश ९	अग्नि (धाता) १०	अग्नि (ईश्वर) °शूकर ११	भूमि (बृहधान्य) १२
द्रुम (पार्थिव) °वृष १९	अग्नि (व्यय) २०	अग्नि (सर्वजित्) २१	भूमि (सर्वधारी) °वृष २२	भूमि (विरोधी) २३	लोह (विकृत) २४
अग्नि (हेमलंब) ३१	भूमि (विलंब) ३२	भूमि (विकारी) °मेष ३३	लोह (शर्वरी) ३४	लोह (प्लव) ३५	जल (शुभकृत्) ३६
भूमि (सौम्य) ४३	लोह (साधारण) °सर्प ४४	लोह (विरोधकृत) ४५	जल (परिधावी) ४६	जल (प्रमादी) °अश्व ४७	द्रुम (आनंद) °व्याघ्र ४८
लोह (दुर्मति) °शश ५५	जल (दुन्दुभि) ५६	जल (रुधिरोद्गारी) °पक्षी ५७	द्रुम (रक्ताक्षी) ५८	द्रुम (क्रोधन) ५९	अग्नि (क्षय) °वृष ६०

१. अधिक मासवाले वर्ष और मास, स-स्-क्य (ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छ़न् ११४६-१२१६ ई०) ब्कं-बुं, त, पृष्ठ २०३ ख।

३—भोटदेशीय मासों के नाम[१]

भोटदेशीय				भारतीय
संख्या	नाम	ऋतुओं के अनु-सार नाम	ऋतु	नाम
१	नाग	अंत	हेमंत	माघ
२	सर्प	आदि	ग्रीष्म	फाल्गुण
३	अश्व	मध्य	ग्रीष्म	चैत्र
४	मेष	अंत	ग्रीष्म	वैशाख
५	वानर	आदि	शरद	ज्येष्ठ
६	पक्षी	मध्य	शरद	आषाढ़
७	श्वा	अंत	शरद	श्रावण
८	शूकर	आदि	शिशिर	भाद्रपद
९	मूषक	मध्य	शिशिर	आश्विन
१०	वृष	अंत	शिशिर	कार्तिक
११	व्याघ्र	आदि	हेमंत	मार्गशीर्ष
१२	शश	मध्य	हेमंत	पौष

१. भोटदेशीय प्रथम मास माघ सुदी प्रतिपद् से आरंभ होता है। मास-गणना अमावस्यांत है, किन्तु अधिक मास के एक साथ न पड़ने के कारण भारतीय मासों से मिलान नहीं रहता।

४—प्रत्येक रब्-ऽब्युङ् में अधि-मास वाले वर्ष और मास[१]

वर्ष-संवत्			मास	
संख्या	भोट नाम	भारतीय नाम	संख्या	नाम
३	भूमि-(स्त्री) सर्प	शुक्ल	९	मूषक
६	जल-(पुरुष) वानर	अंगिरा	३	अश्व
९	द्रुम-(स्त्री) शूकर	युवा	१२	शश
११	अग्नि-(स्त्री) सर्प	ईश्वर	८	शूकर
१४	लोह-(पुरुष) नाग	विक्रम	५	वानर
१७	जल-(स्त्री) मेष	सुभानु	१	नाग
१९	द्रुम-(स्त्री) पक्षी	पार्थिव	१०	वृष
२२	भूमि-(पुरुष) मूषक	सर्वधारी	१०	वृष
२५	लोह-(स्त्री) शश	खर	३	अश्व
२७	जल-(स्त्री) सर्प	विजय	१	नाग
३०	अग्नि-(पुरुष) वानर	दुर्मुख	८	शूकर
३३	भूमि-(स्त्री) शूकर	विकारी	४	मेष
३८	द्रुम-(पुरुष) नाग	क्रोधी	९	मूषक
४१	अग्नि-(स्त्री) मेष	प्लवंग	६	पक्षी
४४	लोह-(पुरुष) श्वा	साधारण	२	सर्प
४७	जल-(स्त्री) वृष	प्रमादी	३	अश्व
४८	द्रुम-(पुरुष) व्याघ्र	आनंद	११	व्याघ्र
४९	द्रुम-(स्त्री) शश	राक्षस	७	श्वा
५२	भूमि-(पुरुष) अश्व	कालमुक्त	४	मेष
५५	लोह-(स्त्री) पक्षी	दुर्मति	१२	शश
५७	जल-(स्त्री) शूकर	रुधिरोद्गारी	६	पक्षी
६०[२]	अग्नि-(पुरुष) व्याघ्र	क्षय	१०	वृष

१. स-स्क्य- (ग्रगस्-प-र्ग्यल्-म्छ्न् ११४६-१२१६ ई०) त, पृष्ठ २०३ ख।

२. भोट पंचांग में प्रति तीसरे वर्ष अधिमास का नियम नहीं है, जैसा कि इस कोष्ठक से मालूम होगा।

५—स-स्क्य मठ (स्थापित १०७३ ई०) के संघराज

स-स्क्य के पाँच प्रधान गुरु

संख्या	नाम	जन्म	गद्दी	मृत्यु
	[1](ऽखोन्)- दकोन्-ग्र्यल्	१०३४ ई०	१०७३	११०२
	[1]व-रि-लो-चृ-व		११०२	(११११)
[2]१	(स-छेन्) कुन्-दगऽ-सञिङ्-पो	जल-वानर १०९१	११११	भू-व्याघ्र ११५८ ई०
[3]२	(सलोब्-द्षोन्) ब्सोद्-नम्स-चृ-मो	जल-श्वा ११४२	(११५८)	जल-व्याघ्र ११८२
[4]३	(र्जे-ब्-चुन) ग्रग्स्-प-ग्र्यल्-म्छन्	अग्नि-शश ११४७	(११८२)	अग्नि-मूषक १२१६
[5]४	(स-पण) कुन्-दगऽ-ग्र्यल्-म्छन्	जल-व्याघ्र ११८२	(१२१६)	लोह-शूकर १२५१
[6]५	(ऽग्स्-ब्लो-ग्रोस्-ग्र्यल्-म्छन्)	१२३४	(१२५१)	१२७९
[7]६	धर्मपालरक्षित	१२६८	१२८०	१२८८
ग[7]७	(शर्-व) ऽजम्-दब यङ्स्-दोन्-ग्र्यन्	१२७६	१२८८	
[7]८	दम्-प-ब्सोद्-नमस्-ग्र्यलम्-छन्	१३११	१३४२	

---

१. 'जर्नल आव् दि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी', (१८८९) में श्री शरच्चंद्रदास का लेख।

२. स-स्क्य-बकं-ऽबुं, क, ख।

३. स-सक्य-ब्-कंऽबुं, ग, ङ च।

४. वही, छ, ज त।

५. वही, थ, द, न।

६. वही, प, फ, ब।

७. 'जर्नल आव् दि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी', (१८८९) में श्री शरच्चंदास का लेख

६—[1]कर-म-संघराज

संख्या	नाम	जन्म	मृत्यु	विशेष
	नारोपा (विक्रम शिला)		१०४० ई०	
	मर्-व-छोस्-क्यि-ब् लो-ग्रोस[1]			
	मि-ल-र्स्-प[1]	१०४०	११२३	१११० ई० मर्-प के पास गया।
	स्गम्-पो-(द्वग्स्-पो)[2] ल्ह-र्जे	१०७९	१५५३	
	(कर्-म-)ऽदुस-ग् सुम्-मख्येन्-[3]	१११०	११९३	
	" रस्-छेन्[4]			
१.	(कर्-म-) स्बोम्-ब्रग्-ब्सोद्-र्दोर्	११७०	१२४८	
२.	" बक-सि-छोस्-ऽज़नि[5]	१२०४	१२८३	अवतारी (टुल्-कु)
३.	" रङ्-ऽब्युङ्-र्दो-र्जे	१२८४	१३३९	
४.	" रोल्-व-र्दो-र्जे	१३४०	१३८३	
५.	" दे-ब्शिन्-ग्शेग्स्-प	१३८४	१४१५	
६.	" म्थोङ्-व-दोन-ल्दन्	१४१६	१४५३	
७.	" छोस्-ग्रग्स्-र्ग्य-म्छो	१४५४	१५०६	
८.	" मि-ब्स्क्योङ्-र्दो-र्जे	१५०७	१५५४	
९.	" द्वङ्-प्युग्-र्दो-र्जे	१५५६	१६०१	
१०.	" छोस्-द्बियिङ्स्-र्दो-र्जे	१६०४	१६७३	

१. 'जर्नल आव् दि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी', (१८८९) जिल्द ५८ (१) और क्लोङ्-र्दल्-गसुं-ऽबुं, छ, पृष्ठ ८क के आधार पर।

२. द्वग्स्-पो मठ ११२१ ई० में स्थापित किया।

३. इसने निम्न मठों को स्थापित किया—ग्शु-म्छुर्-ल्ह-लुङ् (११५४ ई०), म्छुर्-फु (११५९ ई०), कम्-पो-ग्नस्-मङ् (११६४ ई०), ऽदोद्-स्पङ्-फुग् (११६९ ई०), कर्-म-ल्ह-ल्देङ् (११८५ ई०)। ११३९ ई० में स्गम्-पो के पास गया।

४. यहाँ तक शिष्य उत्तराधिकारी होता रहा, पीछे अवतारी उत्तराधिकारी बनने लगा।

५. यहाँ तक शिष्य उत्तराधिकारी होता रहा, पीछे अवतारी उत्तराधिकारी बनने लगा।

७—चोङ्-ख-प की गद्दी के मालिक द्गऽ-ल्दन्-संघराज

नाम	जन्म	गद्दी	मृत्यु
चोङ्-ख-प			१४१९ ई०
धर्म रिन्-छेन्		१४१९	(१४३१)
म्खस-ग्रुब्र-र्जे		१४३१	१४३८
ब्लो-ग्रोस्-छोस्-स्क्योङ्		१४६२	
(ब-सो) छोस्-ग्र्यन्		१४६२	१४७३
ब्लो-बर्तन्		१४७२	१४७८
स्मोन्-लम्-द्पल्		१४९१	
ब्लो-ब्सङ्-ञि-म	१४३९	१४९०	१४९२
वे-ब्सङ्			१४९८
ऽदर्-स्तोन्		१५००	१५११
रिन्-ऽोद्-प	१४५३	१५१७ ?	१५४०
शेस्-रब्-लग्स्-ब्लो	१४५०		१५२९
ब्सोद्-ग्रग्स्-प	१४७८	१५२९	१५५४
छोस्-स्क्योङ्-ग्र्य-ग्छो	१४७३	१५३५	१५३९
(मि-ञग) र्दोर्-ब्सङ्	१४९१	१५३९	१५५३
छोस्-ब्शेस्	१४५३		१५४०
[1]ग्र्यन्-ब्सङ्	१४९७		
ङग्-द्वङ्-छोस्-ग्रग्स्	१५०१	१५४८	१५५०
(ऽोल्-द्गऽ) द्गे-लेग्स्-द्पल्	१५०५	१५५८	१५६७
छोस्-ग्रग्स्-ब्सङ्	१४९३		१५५९
दगे-ऽदुन्-ब् स्तन्-दर्	१४९३	१५६४	१५६८
छे-र्तन्-ग्र्य-म्छो	१५२०	१५६८	१५७७
व्यम्स्-प-ग्र्य-म्छो	१५१६	१५७५	१५९०
द्पल्-ऽब्योर्-ग्र्य-म्छो	१५२६	१५८२	१५९९
दम्-छोस्-(द्पल्-ऽवर्)	१५२३	१५८९	१५९९
द्गे-ऽदुन्-ग्र्यल्-म्छन्	१५३२		
सङ्स्-ग्र्यस्-रिन्-छेन्	१५४०	१४९६	१६१२

---

१. यह नाम क्लोङ्-र्दल् (जन्म १७११ ई०) ग्सुं-ऽबुंच पृष्ठ ७१ ख से लिए गए हैं। बाक़ी राय बहादुर शरच्चंद्रदास के लेख से।

नाम	जन्म	गद्दी	मृत्यु
ङग्-ग्र्यन्		१६०३	१६०७
छोस्-ञेर्-ब् शेस्-गञेन्-ग्रग्स्	१५४६	१६०७	१६१८
(स्तग्-ब्रग्) ब् लो-ग्र्य-म्छो	१५४६	१६१५	१६१८
दम्-छोस्-द्पल्	१५४६	१६१८	१६२१
(छुल्-खिम्स्) छोस्-ऽफेल्	१५६१	१६१९	१६२३
ग्रग्स्-प-ग्र्य-म्छो	१५५५	१६२३	१६२३
(ङग्) छोसं-क्यि-ग्र्यल्-म्छन्			
द्कोन्-म्छोग्-छोस्-ऽफेल्	१५७३	१६२६	१६४६
(कोङ्-पो) ब्स्तन्-ऽजिन्-लेग्स्-ब्शद्		१६३७	
जें-द्गे		१७३७	
(द्वग्स-पो) ब्स् तन्-प-ग्र्यल्-म्छन्		१६४३	१६४७
द्कोन्-म्छोग्-छोस्-ब्सङ		१६४८	१६७३
द्पल्-ल्दन्-ग्र्यल्-म्छन्		१६५४	
ब्लो-ब्सङ्-ग्र्यल्-म्छन्		१६६२	१६७२
ब्लो-ब्सङ्-दोन्-योद्	१६०२	१६६८	१६७८
[1]ब् लो-ब्सङ्-र्नम्-ग्र्यल्			
ब्यम्स्-प-ब्क्र-शिस्	१६१८	१६७५	१६८४
ब् लो-ब्सङ्-नोर्-बु			
क्लु-ऽबुस्-ग्र्य-म्छो		१६८२	
[2]ब्लो-ग्रोस्-ग्र्य-म्छो	१६३५	१६८५	१६८८
(चों-नस्)स्छुल्-खिम्स्-दर्-ग्र्य	१६३२	१६८५	
(ब्स्म्-ब्लो) ब्यिन्-प-ग्र्य-म्छो		१६९२	
(चो-नस्) छुल्-दर्		१६९५	
दोन्-योद्-ग्र्य-म्छो		१७०१	
[3]द्पल-ऽब्योर्-ग्र्यल्-म्छन्			
[1]दोन् ग्रुब-ग्र्य-म्छो			
[1](ब्य-ब्रल्) द्गे-ऽदुन्-फुन्-छोगस्			
[1]ङग्-द्वङ्-म्छोग्-ल्दन्			

१. यह नाम क्लोङ्-र्दल् (जन्म १७११ ई०) ग्सुं-ऽबुंच़ पृष्ठ ७१ ख से लिए गए हैं। बाक़ी राय बहादुर शरच्चंद्रदास के लेख से।

२. १६८७ में यह चीन-सम्राट् के पास पेकिन् गए।

३. यह नाम क्लोङ्-र्दल् (जन्म १७११ ई०) ग्सुं-ऽबुंच पृष्ठ ७१ ख से लिए गए हैं। बाकी राय बहादुर शरच्चंद्रदास के लेख से।

८—बौद्ध विद्वान् और उनके आश्रयदाता आदि

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
	आरंभ-युग (६४०-८२३)		
६३०-९८	स्रोङ्-ब्चन्-	देवविद्यासिंह	थोन्-मि अ-नुऽ-बु
	स्गम्-पो	शंकर (ब्राह्मण)	धर्मकोष
		शीलमंजु	(ह्वशङ्) महादेव
		(नेपाली)	(ल्ह-लुङ्)
			दों-र्जे-द्पल्
७३०-८०२	(ख्रि) ल्दे-		(ब्लन्-क) मूलकोष
	ग्चुग्-ब्र्तन्		(ङग्) ज्ञानकुमार
	शांतरक्षित-युग (८२३-१०४२)		
८०२-८४५	(ख्रि) स्रोङ्-	अनंत	सङ्-शि (चीनी)
	ब्दे-बर्चन्	शांतरक्षित	मे (चीनी)
		पद्मसंभव	गो (चीनी)
		कमलशील	द्पल ग्यि-सेङ्गे
		सुरेंद्राकर प्रभ	ये-शेस्-द्वङ्-पो
			(ली) ज्ञानकुमार
		शील धर्म (ली)	
		धर्मकीर्ति	(स्न-नम्) दों र्जे-
			ब्दुद्-ऽ जोम्स्
		विमलमित्र	र्नम्-म्खऽ-स्क्योङ्
		ज्ञानगर्भ	(ल्चे) ज्ञानसिद्धि
			(ह्वशङ्) महायान
			(चिम्) शाक्यप्रभ
			(प-गोर्) वैरोचन-
			रक्षित
			(थङ्-ति) जयरक्षित

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
			कलुऽ-द्वङ्-पो
			(शुद्-पु) श्रीसिंह
			(र्ब) मंजुश्री
८४७-८७७	(ख्रि) ल्दे-	(अपरांतक)	च़ङ देवेन्द्र
	(स्रोङ्)-	जिनमित्र	
	ब्चन्-पो	सुरेन्द्रबोधि	(ख्रङ्) कुमुदिक
		शीलेंद्रबोधि	(ऽखोन्) नागेंद्ररक्षित
		दानशील	लेग्स्-पऽ-ब्लो-ग्रोस्
		बोधिमित्र	(र्म-आचार्य) रिन्-छेन्-
			म्छोग्
		विद्याकरसिंह	(० प्रभ)
		मंजुश्रीवर्म	
		विद्याकरसिंह	(बन्-दे) र्नम्-पर्-मि-र्तोग्
		धर्मश्रीप्रभ	ग्लङ्-क-तन्
		सर्वज्ञदेव	(ब्य) ख्रि-ग्जिग्स्
			(र्ब) ख्यि-शेर्
		धर्माकर	सङ्-शि
		शाक्यसिंह	(च़ङ) लेग्स्-ग्रुब
		सर्वज्ञदेव	छोस्-क्यि-स्नङ्-व
		विद्याकरप्रभ	(स्गो) रिन्-छेन्-स्दे
		बुद्धगुह्य	(बन्-दे) द्पल्-ब्चे ग्स्
		शांतिगर्भ	(बन्-दे) कुलुऽ-द्वङ्-पो
		(कश्मीरी)	(शङ्) र्ग्यल-ञन्-ञ-ब्स्ङ्
		जिनमित्र	(ल्चे) ख्यि-ऽब्रुग्
			देवचंद्र
			द्पल्-ग्यि-ल्हुन-पो
			द्पल्-ग्यि-द्ब्यङ्-स्
			ब्लोन्-ख्रि-ब्शेङ्
			रत्नरक्षित

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-चा़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
			धर्मताशील
			जयरक्षित
			रत्नेन्द्रशील
८७७-९०१	(ख्रि) रल्-प-चन्	शाक्यसेन	द्गे-वऽ-द्पल्
		ज्ञानसिद्ध	(बन्-दे) योन्-तन्-द्पल्
		मुनिवर्म	(स्न-नम्) ये-शेस्-स्दे
		शाक्यप्रभ	(चोग्-रो) क्लुऽ-ग्र्यल्-म्छन्
		विशुद्धसिंह	धर्मालोक
		प्रज्ञावर्म	क्लुऽ-द्वङ्-पो
			ये-शेस्-द्पल्
			(बन्-दे) र्नम्-म्खऽ
			ये-शेस्-स्नस्-शुम्
			तोंग्-ऽजिन्
			(शङ्) ये-शेस्
			ये-शेस्-स्ञिङ्-पो
			य-शेस्-स्दे
			देवेन्द्र कुमाररक्षित
९०१-९०२	(ग्लङ्-दर्-म)		(ल्ह-लुङ्) द्पल्-र्दो-र्जे
			तिङ्-ङेऽज़िन्-ब्सङ्-पो
			(र्म) रिन्-छेन्-म्छोग्
			(चङ्) रब्-ग्सल्
			(ग्यो) द्गे-ऽब्युङ्
			(स्तोद्-लुङ्-स्मर्)
			शाक्यमुनि ख्यि-र-ब्येद्-प

दीपंकर-युग (१०४२-११०२)

१०००	ये-शेस्-ऽोद्	श्रद्धाकरवर्म	रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो (९५८-१०५५)

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
		जनार्दन	लेग्स्-पऽ-शेस्-रब्
		पद्माकरगुप्त	द्पल्-ऽब्योर
		(०वर्म)	(शिङ्-मो-छे) ब्यङ्
		सुभाषित	छुब्-सेङ्-गे
		बुद्धश्रीशांति	द्गे-वऽ-ब्लो-ग्रोस्
		बुद्धपाल	(ग्यि-चो) स-वइ-ऽोद-सेर् (१०२७) ल
		कमलगुप्त	(स्ग्रो) शेस्-रब्-ग्रग्स्
		करुणा (ज्ञान)	
		श्रीभद्र	शाक्य-ब्लो-ग्रोस्
		सोमनाथ (कश्मीरी) (१०२७)	(लोग्-सक्य) शेस्-रब्-बर्चेग्स्
		धर्मपाल	(मल्-ग्यो) ब्लो-ग्रोस् ग्रग्स्-प
		कनकश्रीमित्र	ग्शोन्-ग्रग्स्
		प्रज्ञापाल	द्गे-वइ-लेग्स्-प
		कुमारकलश	छुल्-ख्रिम्स्-योन्-तन्
		धर्मश्रीवर्म	(ऽब्रोग्-मि) शाक्य-ये-शेश् (मृत्यु १०७३)
		प्रेतक	
		स्मृतिज्ञानकीर्ति	
		सूक्ष्मदीर्घ	
		पद्मरुचि	
		गंगाधर	
		धर्मश्रीभद्र	
		गयाधर	
	ल्ह-ल्दे (राजा) सुभाषित		(ङन्) दर्-म-ग्रग्स्
	ऽोद-ल्दे (राजा) सुनयश्री	मति	(शङ्-द्कऽ) ऽफग्स्-पऽ-

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
			शेस्-रब्
		आरण्यक (कश्मीरी)	
		तेजोदेव	
		परिहितभद्र	
१०४२	ब्यङ्-छुब्-ऽोद	दीपंकरश्रीज्ञान	रिन्-छेन्ब्सङ्-पो
		महाजन	ग्श़ोन्-नु-म्छोग्
		कुमारकलश	(नग्-छो) छुल-ख्रिम्स्-ग्र्यल्-व
		कृष्णपंडित	(से-र्च) बसोद-नम्स-ग्र्यल्
		शांतिभद्र (नेपाली)	(ग्र्य-) ब्च़ोन्-ऽग्रुस्-सेङ्-गे (मृत्यु १०४१)
		आनंद (कश्मीरी)	(ऽब्रग्-ऽव्योर्) शेस्-रब्-ऽवर
		श्रीरथ (कश्मीरी)	छोस-ब्स़ङ्
		अनंन	(ऽब्रो-सेङ्-द्कर्) शाक्य-ऽोद
		देवेंद्र	(ऽगोस्-खुग्-प) ल्हस् ब्चस्
		चंद्रकुमार	(ग्यि-चो) स़-वऽि-ऽोद्-सेर् ल
		विनायक	(योल्-चोग्) दों-र्जे द्रवङ्-फ़्युग्
		अजितश्री भद्र	शाक्य़-ये-शेस्
		अनंतश्री (नेपाली)	दगे-वऽि-ब्लो-ग्रोस
		कुमारश्रीमित्र	
		गयाधर	
		रुद्र	
		बुद्धशांति	
		सुभूतिश्री (शांति)	
		भव्यराज (कश्मीरी)	

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
	शि-व-ऽोद	सुजनश्रीज्ञान	शि-व-ऽोद
		गुणाकरश्री भद्र	ऽब्रो-सेङ्-द्कर्
		मंत्रकलश	शाक्य-ऽोद
			(शग्-शुङ्) व्यङ्-छुब्-शेस्-रब्
		दीपंकररक्षित	
११७६	चें-ल्दे (राजा)	ज्ञानश्री	(ल-स्तोद-र्म) छोस्-ऽवर् (१०४३-८९)
		तिलकलश	(ङोंग्) ब्लो-ल्दन्-शेस् रब (१०५९-११०८)
		सुमतिकीर्ति	(ख्यङ्-पो) छोस्-ब्चोन्
		चंद्रराहुल	(च़ोग्-म्रु) तिङ्-डे-ऽजिन्-ब्सङ-पो
		अतुलदास	(र्ग्युस्) समोन्-लम्-ग्रग्स्
		मनोरथ (कश्मीरी)	
		परहितभद्र	
		ज्ञानश्रीमित्र	
		भव्यराज (कश्मीरी)	
		सुभूतिघोष	
	द्वङ्-ल्दे (राजा)	भव्यराज (कश्मीरी)	(ङोग्) ब्लो-ल्दन्-शेस्-रब् (१०५९-११०८)
	ब्क्र-शिस्-ल्दे-द्वङ्-फ्युग् (राजा)	तिलकलश	(मर्-प) छोस्-क्यि-द्वङ्-फ्पुग-ग्रग्स्
		स्थिरपाल	(ऽब्रोग्-मि) शाक्य-ये-शेस्
		कनकवर्म (कश्मीरी)	रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो (९५८-१०५५)
		जयानंत	(श-म) सेङ्-गे-र्ग्यल्
		अतुलदास	(कलोग्-स्क्य) ग्शोन्-नु-ऽवर

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
		सुमतिकीर्ति	(स्ग्र-ब्स्ग्युर्) दद्-पऽ शेस्-रब्
		अमरचंद्र	(मर्-प) छोस्-क्यि-ब्लो-ग्रोस्
		कुमारकलश	(प-छब्) ञि-म-ग्रग्स् (जन्म १०५५)
		धर्मश्रीभद्र	
		बुद्धश्रीशांति	
		नाडपाद (नारोपा मृत्यु १०४०)	
		मैत्रीपाद	
		शांतिभद्र	
	स-स्क्य-युग (११०२-१३७६)		
११०२-११११	(स-स्क्य) व-रि-लो-च-व	मंजुश्री	व-रि-लो-च-व
		अभयाकरगुप्त (मृत्यु ११२५)	(बन्-दे) शेस्-रब्-द्पल्
		वज्रपाणि (१०६६)	(ग्दब्-ऽखोर्) ब्लो-ग्रग्स्
		बुद्धाकरवर्म	(खे-र्गद्) ऽखोर्-लो-ग्रग्स्
		कृष्ण	(ग्नुब्) धर्म-ग्रग्स्
		फ-दम्-प (मृत्यु १११८)	(स्पोङ्-जो) गसल्-व-ग्रग्स्
		विनयचंद्र	छोस्-क्यि-शेस्-रब्
			(ज़ोङ्-ख-मि-ऽग्) च-मि सङ्स्-ग्र्यस्-ग्रग्स्
			(ब्क्रो-बो) शेस्-रब्-द्पले (जन्म १०५९)
			थोस्-प-द्गऽ
			(र्म-वन्) छोस्-ऽवर्

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
			(म्-छुर्) ये-शेस्-ऽब्युङ्-ग्नस्
११११-५८	(स-स्क्य) कुन्-अलकदेव द्गऽ-सञिङ्-पो		(स्तेङ्-प) छुल् ख्रिम्स्-ऽब्युङ्-ग्नस् (११०६-९०)
		महाकारुणिक	(र्ब) दों-र्जे-ग्रग्स्
		शून्यतासमाधि	(द्प्यल्)-कुन्-द्गऽ-दों-र्जे
		अमोघवज्र	(दङ्-दु) द्कर्-पो
		समंतश्री	फुर्-वु-ऽोद्
			(फग्-रि) रिन्-छेन्-ग्रग्स्
			(र्ब) छोस्-रब्
			(शङ्) शेस्-रब्-ब्ल-म (मृत्यु ११७७)
११८२-१२१६	(स-स्क्य) ग्रग्स्-प-ग्र्यल-म्छन	सर्वज्ञश्री	ग्रग्स्-प-ग्र्यल्-म्छन्
		अनंतश्री (सिंहल)	(र्म) लो-च-व (जन्म ११६०)
		धर्मधर	व्यङ्-छुब्-ऽबुम्
		कीर्तिचंद्र	(शङ्) लो-च-व (जन्म ११७७)
		जगन्मित्रानन्द (मित्रपा, ११९८)	(यर्-लुङ्) ग्रग्स्-प-ग्र्यल्-म्छन्
		लक्ष्मीकर	(ग्नुबस्) छुल्-ख्रिम्स्-शेस्-रब्
			(शोङ्-सतोन्) दों-र्जे-ग्र्यल्-म्छन्
			(ख्रो-फु) व्यम्स्-पऽ-द्पल् (जन्म ११७३)
१२१६-५१	(स-स्क्य) कुन-द्गऽ-	बुद्धश्रीज्ञान	(चल्) छोस्-ब्सङ्-पो

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
	ग्र्यल्-म्छ़न्	(१२००)	
		शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५)	(ब्य-युल्) लो-च-व (१२०१)
		विभूतिचंद्र (१२०४) (जयत्तल)	(रोङ्-ग्र्य) र्नम्-ग्र्यल्-र्दो-र्जे
		दानशील (१२०४)	(र्ब) र्दो-र्जे-द्पल्
		संघश्री (नेपाली, (१२०४)	(छग्) द्ग्र-ब्चोम्-र्ते-ऽ (११५३-१२१६)
		सुगतश्री (१२०४)	छुल्-खिम्स्-ग्र्यल्-म्छन्
		विनयश्री	छुल्-खिम्स्-सेङ्-गे
		धर्मधर	(स्पङ्स्) ग्रग्स्-प ग्र्यल्-म्छन्
		रत्नश्री	
		वज्रासनपाद	
		निष्कलंक	
१२५१-८०	(स-स्क्य) ऽफग्स्-प	सुधनरक्षित	(श्व-मर्) सेङ्-ग्र्यल्
		मणिभद्ररक्षित	(य-ग्रोग-ग्यि-मर्-प) छोस्-क्यि-द्वङ्-पो
		लक्ष्मीश्री (नेपाली)	(छग्) छोस्-र्जे-द्पल् (मृत्यु १२६५)
		लक्ष्मीकर	देवेंद्र
			रत्नरक्षित
			(शोङ्-स्तोन्) र्दो-र्जे-ग्र्यल्-म्छन्
			ब्लो-ग्रोस्-र्तन्-प

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
१२८०-८८	(स-स्क्य) धर्म-पालरक्षित		(स्तग्) शाक्य-ब्सङ्-पो (जन्म १२६२) (मि-ञग्) लो-च-व (मृत्यु १२८२)
१२९०-१३६४	(बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुब	कीर्तिचंद्र	(शेल्-द्कर्) ब्यङ्-छुब्-चें-मो-ब्लो-ब्र्तम्-द्पोन्-पो (१३०३-८०)
		धर्मश्रीभद्र (?)	(जो-नङ्) शेर-ग्र्यन् (मृत्यु १३६१)
		धर्मधर	छोस्-र्जे-द्पल्
		सुमनश्री (कश्मीर)	ञि-म्-ग्र्यल्-म्छन्-द्पल-ब्सङ्-पो
		मणिकश्री	(स्पङ्स्) ब्लो-ग्रोस् ब्र्तन्-प
			(स्प्यल्) छोस्-क्यि-ब्सङ्-पो
			(बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-ग्रुब
च़ोङ्-ख-प-युग (१३७६-१६६४)			
१३५७-१४१९	(चोङ्-ख-प) ब्लो-ब्सङ्-ग्रग्स्-प	वनरत्न (१३८४-१४६८)	(ऽगोस्) यिद्-ब्सङ्-चे (जन्म १३९२)
			ग्शोन्-नु-द्पल्
			(स्तग्) शेस्-रब्-रिन्-छेन् (जन्म १४०५)
			शस्-रब्-ग्र्यल् (जन्म १४२३)
१५२७-७६	(श-लु) धर्मपालभद्र		(श़-लु) रिन्-छेन् ब्सङ् (१४८९-१५६३)
			रिन्-छेन् बक्र-शिस्-द्पल्-

समय	आश्रयदाता या प्रधान व्यक्ति	भारतीय पंडित	लो-च़-व (दुभाषिया) या प्रधान धार्मिक नेता
			ब्रस़ङ् (१५७६) (स्तग्-लुङ्) कुन्-बक्र (१५५५)
१५७५	जन्म (ग्र्यल्-खम्स्) कुन्-द्गऽ स्ञिङ्-पो (लामा तारानाथ)	कृष्णभट्ट तारानाथ	
१६१७-८२	(दलाईलामा) न्लो-ब्सङ्-ग्र्य-म्छो[1]	बलभद्र (कुरुक्षेत्र)	फुन्-छोग्-ल्हुन्-ग्रुब (१६६४)
		गोकुलनाथमिश्र कृष्ण (कुरुक्षेत्र) गौतमभारती ओंकारभारती उत्तमगिरि	

९—तिब्बत में भारतीय ग्रंथों के कुछ प्रधान अनुवादक, उनके सहायक और ग्रंथ

काल	अनुवादक	सहायक, या सम- सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
		शांतरक्षित-युग (८२३-१०४२)		
७७५	शांतरक्षित	धर्मालोक	हेतुचक्र	दिङ्-नाग
७७५	पद्मसंभव	वैरोचन	वज्रमंत्रसंग्रह	

१. लो-च़-व और पंडित को एक पंक्ति में रखने में काल का ध्यान नहीं रखा गया है। कुछ को छोड़कर बाकी पंडित स्वयं तिब्बत में गये थे।

काल	अनुवादक	सहायक, या सम-सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
		द्पल्-ग्यि-सेङ्-गे	डाकिनीजिह्वा-जालतंत्र	
	विमलमित्र	(बन्-दे) ज्ञानकुमार	वज्रसत्वमायाजाल-गुह्य सर्वादर्शतंत्र	
		नम्-म्खऽ-स्क्योङ्	सप्तशतिका कमलशील प्रज्ञा-पार- मिता-टीका	
		रिन्-छेन्-स्दे	प्रज्ञापारमिता- विमलमित्र हृदयटीका	
	सुरेंद्राकरप्रभ (ली-वासी)	नम्-म्खऽ-स्क्योङ् व्याख्या	प्रतीत्यसमुत्पाद- वसुबंधु	
		शील धर्म (ली) ?		
	ज्ञानगर्भ	नम्-म्खऽ-स्क्योङ्	सम्बन्ध-परीक्षा धर्मकीर्ति	
८१४	जिनमित्र	सुरेंद्रबोधि	शतसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता	
		प्रज्ञावर्म	दशसाहस्रिकाप्रज्ञा-पारमिता	
		दानशील		
		मुनिवर्म	तथागताऽचिंत्य-गुह्यनिर्देश	
		शीलेन्द्रबोधि		
		ज्ञानगर्भ		
		शाक्य-प्रभ		
		धर्मपाल	ब्रह्मविशेषचिंता-परिपृच्छा-सूत्र	
		ज्ञानसिद्ध		
		मंजुश्रीवर्म		
		रत्नेंद्रशील		

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
		ये-शेस्-सदे	युक्तिपष्ठिका-वृति	चंद्रकीर्ति
		ये-शेस्-सदे	न्याय-विंदु-टीका	विनीतदेव
		देवेंद्ररक्षित (लोत्सव)	सिद्धसार (वैद्यक)	
		(क-व) द्पल्-ब्त्सेग्स्	अभिधर्मकोश	वसुबंधु
		जयरक्षित		
		देवचंद्र	त्रिधर्मकसूत्र	
		रत्नरक्षित	महाव्युत्पति (८७४)	
८१४	(शङ्) ये-शेस्-स्दे	जिनमित्र	अभिधर्मसमुच्चय	असंग
		सुरेंद्रबोधि	गयशीर्ष-सूत्र-व्याख्या	वसुबंधु
	शीह्लेंद्रबोधि	मध्यमकालंकार-पंचिका		कमलशील
	शीह्लेंद्रबोधि	महायानसंग्रह		असंग
	प्रज्ञावर्म	मध्यमकालंकार	शांतरक्षित	
	दानशील	शिक्षासमुच्चय	शांतिदेव	
	मुनिवर्म	श्रामणेरकारिका	नागार्जुन	
	मंजुश्रीगर्भ (० वर्म)	दशभूमिक-व्याख्यान वसुबंधु		
		विजयशील	धर्मसंगीति-सूत्र	
		ज्ञानसिद्धि	बोधिदिङ् निर्देश	
८००	धर्मताशील (लो-च-व)	शाक्यसेन	अष्टसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता	
		देवेंद्ररक्षित (लो०)		
		कुमाररक्षित (लो०)		
		शाक्यप्रभ		
		धर्मपाल	ब्रह्मविशेषचिंतापरिपृच्छा	
		जिनमित्र		
		सुरेंद्रबोधि	सर्वधर्मसमता-विपंचित-	

काल	अनुवादक	सहायक, या सम-सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
		शीलेंद्रबोधि	समाधिराज-सूत्र	
	(ह्व-शङ्) सब्-मो नेम्-पर्-मि-तोग्-प		समाधि-प्रतिकूल (चीनीभाषा से)	
	(क-व) द्पल्-ब्चेग्स्	विद्याकरसिंह (०सिद्ध)	संचयगाथापंचिका	बुद्धश्री ज्ञान
		शाक्यसिंह	सूत्रालंकार	मैत्रेय-नाथ
		शाक्यसिंह	सूत्रालंकार-भाष्य	असंग
		विद्याकरप्रभ	मध्यमकनयसार-समासप्रकरण	विद्या-करप्रभ
		विशुद्धसिंह	अभिधर्मकोश-टीका (स्फुटार्था)	यशोमित्र
		जिनमित्र	अभिधर्मकोश-भाष्य	वसुबंधु
		प्रज्ञावर्म	हेतुविंदु	धर्मकीर्ति
		ज्ञानगर्भ	भद्रचर्याप्रणिधान-टीका	अलंकार-भद्र
		सर्वज्ञदेव	स्खलितप्रमर्दन	आर्यदेव
		सर्वज्ञदेव	बोधिचर्यावतार	शांतिदेव
		धर्माकर	विनयप्रश्न-कारिका	कल्याण-मित्र
		शीलेंद्रबोधि	महावैरोचनाऽभि-संबोधि-सूत्र	
		प्रज्ञाकरवर्मा	हेतुविंदु-टीका	विनीतदेव
		विद्याप्रभाकर	(?)	
		शुद्धसिद्ध	रत्नचंद्रपरिपृच्छा	
		द्पल्-ग्यि-ल्हुन-पो	द्रुमकिन्नरराज-परिपृच्छा	
		ब्सङ्-स्क्योङ्	सूर्यगर्भमहावैपुल्य-सूत्र	
		द्पल्-द्ब्यङ्-स्	भद्रकल्पिक-सूत्र	
		रिन्-छेन्-म्छोग्	उदानवर्ग	
	(चोग्-रु)-	विशुद्धसिंह		

काल	अनुवादक	सहायक, या सम-सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
	क्लुऽि-ग्र्यल्-म्छन्	ज्ञानगर्भ	मूलमध्यमक-कारिका	नागार्जुन
		प्रज्ञावर्म (०गर्भ)	मूलमध्यमक-वृत्ति	बुद्धपालित
		सर्वज्ञदेव [कश्मीरी	मूलमध्यमक-वृत्ति	भाव्य (भाव विवेक)
		जिनमित्र (मूल सर्वास्ति वादी]	प्रातिमोक्ष-सूत्र-टीका	
		"	विनयविभंग-टीका	विनीतदेव
		"	विनय-सूत्र-टीका	धर्ममित्र
		(र्चङ्स) देवेन्द्ररक्षित		
		दीपंकर-युग (१०४२-११०२)		
९५८-१०५४	रिन्-छेन्-सुभाषित ब्सङ्-पो		अष्टसाहासिका प्रज्ञा-पारिमिता	
	दीपंकरश्रीज्ञान		त्रिशरणसप्ततिका	चंद्रकीर्ति
	कमलगुप्त		विमलप्रश्नोत्तर रत्नमाला	अमोघवर्ष (राजा)
	धर्मश्रीभद्र		ध्यान-षड्-धर्म-व्यव-स्थान-वृत्ति	दान-शील
	पद्माकरश्रीज्ञान		अभिधानोत्तर-तंत्र	
	श्रद्धाकरवर्मा		हस्तवालप्रकरण	आर्यदेव
	पद्माकरवर्मा		परमार्थ बोधि चित्तभावना	अश्वघोष
	शुभशांति		अभिसमयालंकारा-लोक	हरिभद्र
	जनार्दन		अष्टांगहृदय-संहिता	नागार्जुन
	गंगाधर		सप्तगुणपरिवर्णनकथा	वसुबंधु
	बुद्धभद्र		चतुर्विपर्ययकथा	मति-चित्र (मातृचेट)
	बुद्धश्रीशांति		अश्वायुर्वेद	शालिहोत्र

काल	अनुवादक	सहायक, या सम-सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
	छुल्-ख्रिम्स्-योन्-तन् ब्लो ल्दन्-शेस्-रब्	सुमागधावदान		
९८२-१०५४	दीपंकर-श्रीज्ञान	रिन्-छेन्-ब्सङ्-पो	त्रिशरणसप्ततिका	चंद्रकीर्ति
	द्गे-वऽि-ब्लो-ग्रोस्	बोधिपथप्रदीप	दीपंकर-श्रीज्ञान	
	शाक्य-ब्लो-ग्रोस्	समाधिसंवर-परिवर्त	दीपंकर श्रीज्ञान	
	ऽब्रोम्-स्तोन्	विमलरश्मिविशुद्ध-प्रभाधारणी		
	(ग्र्य) ब्चोन-ग्रुस्-सेङ्-गे	मध्यमकरत्नप्रदीप	भाव्य (भाव-विवेक)	
	(नग्-छो) ख्रिम्स्-ग्र्यल्-व	छुल्मध्यमक हृदय	"	
	"	मध्यमक वृत्ति ग्शोन्-नु-म्छोग्	"	
	द्गे-वऽि-ब्लो-ग्रोस्	बुद्धशांति		
		सुभुतिश्रीशांति		
		करुणा (ज्ञान)-श्रीभद्र		
		श्रीकुमार	बोधिसत्वचर्यावतार-संस्कार	कल्याणदेव
		दीपंकरश्रीज्ञान	अवलोकितेश्वर-परिपृच्छा सप्तधमक	

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
१०२७	सोमनाथ	शेस्-रब्-ग्रग्स्	क़ालचक्रतंत्र	
१०७४	(ऽब्रोग्-मि)	गयाधर	संपुटीतंत्र	
मृत्यु	शाक्य-ये-शेस्			
		अमोघवज्र		
		प्रज्ञागुह्य		
	गयाधर	(ग्यि-जो) स-बइ-ऽोद्-सर्-ल	बुद्धकपाल-योगिनी-तंत्र	
		(ऽगोस्-खुग्-प) ल्ह-व्चस्	वज्रडाकतंत्र	
		(ऽब्रोग्-मि) शाक्य-ये-शेस्	हेवज्रतंत्रराज	
	शि-व्ऽोद्	सुजनश्रीज्ञान		
		मंत्रकलश	परमादिमहायान-कल्पराज	
		गुणाकरभद्र		
११०९ (डोंग) मृत्यु	ब्लोन्ल्द्न शेस्-ख़	अमरगोमी	अभिसमयालंकारवृत्ति	प्रज्ञाकरमति
		दीपंकरश्रीज्ञान	अभिसमयालंकारालोक[1]	हरिभद्र
		मनोरथ	अपोहसिद्धि	शंकरानंद (ब्राह्मण)
		कुमारश्रीभद्र		
		तिलकलश	भद्रचर्याप्रणिधानव्याख्या	नागार्जुन
		सुमतिकीर्ति	बोधिचित्तोत्पाद-समादानविधि	जेतारि
		अतुलदास	त्रिसंवरक्रम	(अनाविलवज्र)
		शांतिभद्र		
		महाजन (कश्मीरी)	धर्मधर्मताविभंगवृत्ति	वसुबंधु

काल	अनुवादक	सहायक, या सम-सामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
		सज्जन	महायानोत्तर-तंत्रव्याख्या	असंग
		मंजुश्रीवर्म	अमोघपाशषट् पाराम्ताधारणी	
		भव्यराज	अपोहप्रकरण	धर्मोत्तर
		परहितभद्र	न्यायबिंदु	धर्मकीर्ति
		"	प्रमाणविनिश्चय	"
१०५५ (प-छब्) जन्म ञि-म-ग्रग्स्		पुण्यसंभव	अपरिमितायुर्ज्ञान-हृदयधारणी	
		मुदितश्री	युक्तिषष्ठिका-कारिका	नागार्जुन
		सूक्ष्मज्ञान	चतु:शतकशास्त्र	आर्यदेव
		तिलकलश	मध्यमका-वतारभाष्य	चंद्रकीर्ति
		कनकवर्म	अभिधर्मकोश-टीका (लक्षणानु-सारिणी,	(पूर्णबर्द्धन)
		हसुमति	मूलमध्यमकवृत्ति (प्रसन्नपदा)	चंद्रकीर्ति
		अजितश्रीभद्र	अष्टाक्षणकथा	अश्वघोष
(ऽब्रो-सेङ्-द्कर) शाक्य-ऽोद्		शांतिभद्र (नेपाली)	विज्ञप्तिमात्रता-सिद्धि	रत्नाकर शांति
	कुमारकलश	मध्यमकालंकारवृत्ति		"
	चंद्रकुमार	महायानविंशिका		नागार्जुन
	रुद्र	सुभाषितरत्नकरंड		(महाकवि) हर्ष
	अनंतश्री (नेपाली) छोस्-क्यि-शेस्-रब (मर्-प)	कार्यकारणभाव-सिद्धि		ज्ञानश्रीमित्र

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
	छोस्-क्यि-द्वङ्-फ्पुग			
	स-स्क्य-युग (११०२-१३७६)			
११०६-९०	छुल्-ख्रिम्-स-ऽब्युङ्-ग्नस्	अलंकदेव	विनयसूत्रव्याख्या	प्रज्ञाकर
		"	जातकमाला	हरिभद्र
११८२	(यर्-लुङ्-प)	धर्मधर	प्रतिमामानलक्षण	आत्रेय
१२९०	ग्रग्स्-प-र्ग्यल्-म्छन्			
		कीर्तिचंद	लोकानंदनाटक	चंद्रगोमी
		"	अमरकोट	अमरसिंह
		"	" टीका (कामधेनु)	सुभूतिचंद्र
११७३ जन्म	(ख्रो-फु) व्यम्स्-पऽ-द्पल्	जगन्मित्रानंद (मित्रयोगी)	चतुरंगधर्मचर्या	जगन्मित्रानंद
		शाक्यश्रीभद्र	महायानोपदेशगाथा	शाक्यश्रीभद्र
११२२-१२२५	शाक्यश्रीभद्र	(ख्रो-फु) व्यम्स् पऽ-द्पल्	सप्तांगधर्मचर्यावतार	शाक्यश्रीभद्र
		द्ग्र-ब्चोम्	बोधिचित्तसंवरग्रहणविधि	अभयाकर
		कुन्-द्गऽ-र्ग्यल्-म्छन्	प्रमाणवार्तिककारिका	धर्मकीर्ति
	(शङ्-स्तोन्) दों-जे-र्ग्यल्-म्छन्	लक्ष्मीकर	नागानंदनाटक	श्रीहर्षदेव
		"	बोधिसत्वावदानकल्पकता	क्षेमेंद्र (महाकवि)
		"	काव्यादर्श	दंडी

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
१०९०-१३४६	(बु-स्तोन्) रिन्-छेन्-) ग्रुब्	(कलाप) धातुकाय	दुर्गसिंह	
		त्याद्यंतप्रक्रिया	हर्षकीर्ति	
	सुमनश्री	नवश्लोकी	कंबल	
	"	ऊर्ध्वजटाऽनुत्तरतंत्र[१]		
१३०१-८०	व्यङ्-छुब् च-मो (ब्लोर्तन्-द्पोन्-पा)	सुमनश्री (कश्मीरी)	मेघदूत	कालिदास
			अभिधर्मसमुच्चय-टीका	
	चोङ्-ख-प-युग (१३७६-१६६४)			
१३८४-१४६८	वनरत्न	(ऽगोस्) यिद्-बस़ङ्-चे़-ग्श़ोन्नु-द्पेल् (जन्म १३९२) (स्तग्) शेस्-रब्-रिन्-छेन् (जन्म १४०५) शेस्-रब्-ग्र्यल् (जन्म १४२३)		
	(श-लु) धर्मपालभद्र जन्म १५२७		अभिधर्मकोशटीका	स्थिरमति
			कालचक्रगणित	
			ईश्वरकर्तृत्वनिराकृति	नागार्जुन
			मंजुश्रीशब्दलक्षण	भव्यकीर्ति
			" वृत्ति	देव (कलिंगराज)
(ग्र्यल्-खम्स्-प) कुन्-द्गऽ-सजिङ्-पो (तारानाथ) जन्म १५७५	कृष्णभट्ट (कुरुक्षेत्र)		सारस्वतव्याकरण	अनुभूतिस्वरूपाचार्य

काल	अनुवादक	सहायक, या समसामयिक	अनुवादित ग्रंथ	ग्रंथकर्त्ता
		अन्तिम युग (१६६४—)		
१६६५	फुन्-छोग्-ल्हुन्-ग्रुब्[1]	गोकुलनाथमिश्र	प्रक्रियाकौमुदी (कुरुक्षेत्र)	रामचंद्र (१६५८)
		बलभद्र	सारस्वतव्याकरण (१६६५)	अनुभूति-स्वरूपाचार्य
		गौतमभारती ओंकारभारती उत्तमगिरि	आयुर्वेदसारसमुच्चय (१६६४)	

Indian Institute of Advanced Study
Acc. No. 140860
Date 15/11/15
Shimla

१. यह सूची पूर्ण नहीं है। इसमें सिर्फ समकालीन अनुवादकों को दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। तेरहवें दलाई लामा मुनि शासन-सागर का देहान्त १८ दिसम्बर १९३३ (अगहन की अमावस्या) को ल्हासा में हुआ।

राहुल सांकृत्यायन की उपलब्ध पुस्तकें

दर्शन, धर्म

दर्शन-दिग्दर्शन
बौद्ध दर्शन
इस्लाम धर्म की रूपरेखा
तिब्बत में बौद्ध धर्म

कहानियाँ

वोल्गा से गंगा
बहुरंगी मधुपुरी
कनैला की कथा
सतमी के बच्चे

निबन्ध, इतिहास, संस्कृत

साहित्य निबन्धावली
पुरातत्व निबन्धावली
दिमागी गुलामी
साम्यवाद ही क्यों
हिन्दी काव्य धारा
तुम्हारी क्षय
आज की समस्याएँ
अकबर
विश्व की रूपरेखा

जीवनी

सिंहल के वीर
माऊ चे तुंग
कार्ल मार्क्स
वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली
घुमक्कड़ स्वामी
बचपन की स्मृतियाँ
मेरे असहयोग के साथी
जिनका मैं कृतज्ञ

उपन्यास

विस्मृति के गर्भ में
निराले हीरे की खोज
जीने के लिए
अनाथ
सोने की ढाल
जय यौधेय
दाखुंदा
सिंह सेनापति
दिवोदास
अदीना
सूदखोर की मौत
बाइसवीं सदी
भागो नहीं दुनिया को बदलो
राजस्थानी रनिवास

यात्रा भ्रमण, नाटक

किन्नर देश में
विस्मृत यात्री
घुमक्कड़ शास्त्र
तीन नाटक

राहुल सांकृत्यायन की उपलब्ध पुस्तकें

दर्शन, धर्म

- दर्शन-दिग्दर्शन
- बौद्ध दर्शन
- इस्लाम धर्म की रूपरेखा
- तिब्बत में बौद्ध धर्म
- ऋग्वेदिक आर्य

कहानियाँ

- वोल्गा से गंगा
- बहुरंगी मधुपुरी
- कनैला की कथा
- सतमी के बच्चे

निबन्ध, इतिहास, संस्कृति

- साहित्य निबन्धावली
- पुरातत्व निबन्धावली
- दिमागी गुलामी
- साम्यवाद ही क्यों
- हिन्दी काव्य धारा
- तुम्हारी क्षय
- आज की समस्याएँ
- अकबर
- विश्व की रूपरेखा

जीवनी

- सिंहल के वीर
- माऊ चे तुंग
- कार्ल मार्क्स
- वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली
- घुमक्कड़ स्वामी
- बचपन की स्मृतियाँ
- मेरे असहयोग के साथी
- जिनका मैं कृतज्ञ

उपन्यास

- विस्मृति के गर्भ में
- निराले हीरे की खोज
- जीने के लिए
- अनाथ
- सोने की ढाल
- जय यौधेय
- दाखुंदा
- सिंह सेनापति
- दिवोदास
- अदीना
- सूदखोर की मौत
- बाइसवीं सदी
- [illegible]
- [illegible]

यात्रा [illegible]

- विस्मृत [illegible]
- घुमक्कड़ शास्त्र
- तीन नाटक

Library IIAS, Shimla
H 294.7909515 Sa 586 T
140860

Designed by: CHANDRA ARTS